प्रकाशक:-

मुद्रक
जैन विजय प्रेस,
सूरत

निवेदन।

सारे जैन सिद्धान्तका सार यदि किसी शास्त्रमें हो तो वह श्री उमास्वामी कृत-तत्त्वार्थ सूत्र यानि मोक्षशास्त्रमें है। तथा इसपर राज-वार्तिक, श्लोकवार्तिक, अर्थप्रकाशिका, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थसार आदि अनेक टीकाएं संस्कृत व हिन्दी भाषामें प्रकट होगई हैं और विद्यार्थियोंके पठन पाठनके लिये इसकी टीका स्व० बालब्र० पं० पन्नालालजी बाकलीवालने कोई ३५-४० वर्ष हुए की थी जो अच्छी है व आजतक प्रचलित है लेकिन उसमें कई प्रकारकी त्रुटियां होनेसे विद्यार्थियोंको समझनेमें व अध्यापकोंको समझानेमें कठिनाई पड़ती थी। अतः इस सिद्धांतशास्त्रके एक ऐसे अनुवादकी आवश्यकता थी जो विद्यार्थियोंको अधिक सुगम हो तथा जिसमें इसके सिद्धांतोंको समझनेके लिये आवश्यक चित्र व चार्ट-नकशे भी हों, जिसकी पूर्ति पञ्चस्तोत्र संग्रह, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदिके अनुवादक-श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य-सागरने कर दी है। आपने इस शास्त्रका अनुवाद भी पञ्चस्तोत्र संग्रहकी तरह ऑनररी तौरसे-सेवा-भावसे ही अतीव परिश्रमपूर्वक कर दिया है जिसके लिये हम व सारा जैन समाज आपका अत्यन्त आभारी रहेगा।

विशेषता—मोक्षशास्त्रके इस अनुवादमें विद्यार्थियोंकी सहु-लियतके लिये कई नकशे व चार्ट तो दिये ही हैं लेकिन उनके अतिरिक्त इस ग्रन्थराजके कर्ता श्री उमास्वामीजीका जीवनपरिचय व

बड़ी विषयसूची भी रख दी है तथा अन्तमें 'लक्षणसंग्रह' भी अकारादि क्रमसे रखा गया है (जिससे जैन सैद्धांतिक कोई भी शब्दका अर्थ ढूंढ़नेमें देर नहीं लगेगी) और विद्यार्थीगण अपनी परीक्षाकी तैयारी सुगमतासे कर सकें इसलिये प्रत्येक अध्यायके अंतमें प्रश्नावली रख दी गई है तथा दानवीर माणिकचंद दिगम्बर जैन परीक्षालयका और भा० दि० जैन परिषद परीक्षालयका एक २ प्रश्नपत्र भी जोड़ दिया गया है।

वास्तवमें अब यह शास्त्र विद्यार्थियोंके लिये अतीव उपयोगी होगया है तथा स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये भी यह उपयुक्त होगा। ऐसे ग्रन्थ-राजकी टीका निःस्वार्थभावसे कर देनेवाले पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य महोदयका हम एकवार फिरसे आभार मानकर यह आशा रखते हैं कि सभी विद्यालय, पाठशाला, स्कूल, गुरुकुल, आश्रम आदिके संचालक अब मोक्षशास्त्रकी इस सुगम टीकाको ही अपनी संस्थाओंमें स्थान देंगे।

इस सचित्र टीकाकी पृष्ठ संख्या भी बहुत बढ़ गई है तथा महा-युद्धके कारण कागजकी मंहगीका पारावार नहीं है तौभी हमने इसका मूल्य विद्यार्थियोंकी सहुलियतके लिये सिर्फ बारह आने ही रखा है। अतः आशा है कि सब विद्यार्थीगण व स्वाध्यायप्रेमी भाई इसका ऐसा लाभ उठावेंगे कि हमें शीघ्र ही इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनेका मौका प्राप्त होसके।

सूरत
वीर सं० २४६७
आषाढ़ वदी ४
ता० १३-६-४१

निवेदक—
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

समर्पण ।

'स्याद्वादवाचस्पति' 'सिद्धान्तशास्त्री' न्यायतीर्थ
पण्डित दयाचन्द्रजी शास्त्री, प्रधानाध्यापक
श्री सतर्क० दि० जैन विद्यालय—सागर

—की—

पुनीत सेवामें अनुवादक द्वारा
यह ग्रन्थ
सादर समर्पित किया
जाता है ।

मोराजी भवन
सागर
ता. ३-६-१९४१

भवदुपकारविनतः-
पन्नालाल जैन ।

अनुवादकके दो शब्द।

'तत्त्वार्थसूत्र' जैनागममें अत्यन्त प्रसिद्ध शास्त्र है। इसकी रचनाशैलीने तत्कालिक तथा उसके बादके समस्त विद्वानोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि उसके ऊपर पूज्यपाद, अकलङ्कस्वामी तथा विद्यानन्दी आदि आचार्योंने महाभाष्य रचे हैं। तत्त्वार्थसूत्र जिस तरह दिगम्बर आम्नायमें सर्वमान्य है उसी तरह श्वेताम्बर आम्नायमें भी सर्वमान्य है। दिगम्बर सम्प्रदायमें इसके कर्ताको 'उमास्वामी' और श्वेताम्बर आम्नायमें 'उमास्वाति' कहते हैं।

हम सुकुमारमति बालकोंको 'त' और 'म' के झगड़ेमें न डालकर केवल ग्रन्थ प्रतिपादित विषयसे परिचित कराना चाहते हैं।

इस ग्रन्थमें आचार्य उमास्वामीने पथभ्रान्त संसारी पुरुषोंको मोक्षका सच्चा मार्ग बतलाया है—'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। मोक्षमार्गका प्ररूपक होनेके कारण ही इसका दूसरा नाम 'मोक्षशास्त्र' भी प्रचलित हो गया है। मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका इस ग्रन्थमें विशद विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्यायमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका विवेचन है। दूसरे अध्यायमें सम्यग्दर्शनके विषयभूत जीवतत्वके असाधारण भाव, लक्षण,

इन्द्रियां, योनि, जन्म तथा शरीरादिका वर्णन है। तीसरे अध्यायमें जीव तत्त्वका निवासस्थान वतलानेके लिये पाताललोक, नरकलोक और मध्यम-लोकका सुन्दर प्ररूपण है। चतुर्थ अध्यायमें ऊर्ध्वलोक तथा चार प्रकारके देवोंके निवासस्थान, भेद, आयु, शरीर आदिका वर्णन किया गया है। पांचवे अध्यायमें अजीव तत्वका सुन्दर निरूपण है। छठवें अध्यायमें आस्रवका वर्णन करते हुए आठों कर्मोंके आस्रवके कारण वतलाये हैं जो सर्वथा मौलिक हैं। सातवें अध्यायमें शुभास्रवका वर्णन करनेके लिये सर्वप्रथम व्रत सामान्यका स्वरूप वतलाकर श्रावकाचारका स्पष्ट वर्णन किया गया है। आठवें अध्यायमें वन्ध तत्त्वके, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश नामक भेदोंका रोचक व्याख्यान है। नवम अध्यायमें संवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन है। दोनों तत्त्वोंका वर्णन अपने ढ़ंगका निराला ही है। और दशवें अध्यायमें मोक्षतत्वका सरल संक्षिप्त विवेचन किया गया है। संक्षेपसे इस ग्रन्थमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा उनके विषयभूत जीव, अजीव, आस्रव, वन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षतत्वका वर्णन है।

अभीतक जैन सम्प्रदायमें धर्मशास्त्रके जितने ग्रन्थ देखनेमें आये हैं उन सबमें तत्वोंका निरूपण दो रीतियोंसे किया गया है। एक रीति तो वह है जिसे आचार्य श्री उमास्वामीने प्रचलित किया है और दूसरी रीति वह है जिसे आचार्य नेमिचन्द्राचार्यने धवल सिद्धान्तके आधारपर गोमटसारमें वीस प्ररूपणाओंका वर्णन करते हुए प्रचलित किया है। तत्व निरूपणकी दोनों रीतियां उत्तम हैं, अपने २ ढंगकी अनुपम हैं इसमें सन्देह नहीं, परन्तु आचार्य उमास्वामी द्वारा प्रचलित

हुई रीतिको उनके बादके विद्वानोंने जितना अपनाया है—अपनी रचनाओंमें उस रीतिको अपनाया है उतना दूसरी रीतिको नहीं अपनाया। गोम्मटसारकी शैलीका गोम्मटसार ही है उसका मूलभूत धवलसिद्धान्त, परन्तु उमास्वामीकी शैलीसे तत्व प्रतिपादन करनेवाले अनेक ग्रन्थ हैं। पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्दी तो उनके व्याख्याकार—भाष्यकार ही कहलाये परन्तु अमृतचन्द्रसूरि, अमितगत्याचार्य, जिनसेन आदिने भी अपने ग्रन्थोंमें उसी पद्धतिको अपनाया है। अस्तु। इन सब बातोंसे प्रकृत ग्रन्थ और आचार्य उमास्वामीका गौरव अत्यन्त बढ़ गया है।

मोक्षशास्त्र—तत्त्वार्थसूत्रके ऊपर अनेक टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, एकसे एक उत्तम हैं। परन्तु फिर भी छात्रोंको कई विषय समझनेमें कठिनाई पड़ती थी। अतः उनकी कठिनाइयोंको कुछ अंशोंमें दूर करनेके लिये मैंने प्रयत्न किया है।

पुस्तकको टिप्पणी, नोट, चार्ट, नकशा तथा आवश्यक भावार्थ वगैरहसे सरल और रोचक बनानेका उद्योग किया गया है। यदि छात्रोंको कुछ अंशोंमें लाभ हुआ तो अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

प्रमाद एवं अज्ञानसे अनेक त्रुटियोंका रहजाना संभव है अतः विद्वद्गण मुझे क्षमा करते हुए सौहार्दभावसे उन त्रुटियोंसे सूचित करनेकी कृपा करें जिससे आगामी संस्करणमें वे त्रुटियां न रह सकें।

—अलं पल्लवितेन।

मोराजिभवन,
सागर।
३-६-१९४१।

विनीतः—
पन्नालाल जैन।

मोक्षशास्त्रके रचयिता-
-श्री उमास्वामीजी।

आचार्यप्रवर उमास्वामीका नाम 'तत्वार्थसूत्र' नामक ग्रन्थके कारण अजर अमर है। यह ग्रन्थ जैनोंकी 'बाइबिल' है और खूबी यह कि संस्कृत भाषामें सबसे पहला यही जैन ग्रन्थ है। सचमुच आचार्य उमास्वामीने ही जैन सिद्धांतको प्राकृतसे संस्कृत भाषामें प्रकट करनेका श्रीगणेश किया था और फिर तो इस भाषामें अनेकानेक जैनाचार्योंने ग्रन्थ रचना की।

श्री उमास्वामीकी मान्यता जैनोंके दोनों सम्प्रदायों-दिगम्बर और श्वेतांबरमें समान रूपसे है। और उनका 'तत्वार्थसूत्र' ग्रन्थ भी दोनों संप्रदायोंमें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है।

किंतु ऐसे प्रख्यात आचार्यके जीवनकी घटनाओंका ठीक हाल ज्ञात नहीं है। श्वेतांबरीय शास्त्रोंसे यह जरूर विदित है कि न्यग्रोथिका नामक नगरीमें उमास्वातिका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम स्वाति और माताका नाम वात्सी था। वह कौभीषणी गोत्रके थे; जिससे उनका ब्राह्मण या क्षत्री होना प्रगट है। उनके दीक्षागुरु ग्यारह अंगके धारक घोषनंदि क्षमण थे और विद्याग्रहणकी दृष्टिसे उनके गुरु मूल नामक वाचकाचार्य थे। उमास्वाति भी वाचक कहलाते थे और उन्होंने 'तत्वार्थसूत्र' की रचना कुसुमपुर नामक नगरमें की थी।

दिगम्बर शास्त्रोंमें उनके गृहस्थ जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता है। साधु रूपमें वह श्री कुंदकुंदाचार्यके पट्ट शिष्य बताये गये हैं और श्री 'तत्वार्थसूत्र'की रचनाके विषयमें कहा गया है कि सौराष्ट्र देशके मध्य ऊर्जयंतगिरिके निकट गिरिनगर नामके पत्तनमें आसन्न भव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न श्वेतांबर भक्त 'सिद्धय्य' नामक एक विद्वान श्वेतांबर मतके अनुकूल सकल शास्त्रका जाननेवाला था, उसने दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह एक सूत्र बनाया और उसे एक पाटियेपर लिख छोड़ा। एक समय चर्यार्थ श्री गृद्धपिच्छाचार्य 'उमास्वामी' नामके धारक मुनिवर वहांपर आए और उन्होंने आहार लेनेके पश्चात् पाटियेको देखकर उसमें उक्त सूत्रके पहले 'सम्यक्' शब्द जोड़ दिया।

जब वह सिद्धय्य विद्वान वहांसे अपने घर आये और उसने प्रसन्न होकर अपनी मातासे पूछा कि, किस महानुभावने यह शब्द लिखा है? माताने उत्तर दिया कि एक महानुभाव निर्ग्रन्थाचार्यने यह बनाया है। इसपर वह गिरि और अरण्यको ढूंढता हुआ उनके आश्रममें पहुंचा और भक्तिभारसे नम्रीभूत होकर उक्त मुनिमहाराजसे पूछने लगा कि आत्माका हित क्या है? मुनिराजने कहा—'मोक्ष' है। इसपर मोक्षका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय पूछा गया, जिसके उत्तररूपमें ही इस ग्रन्थका अवतार हुआ है। इसी कारण इस ग्रंथका अपर नाम 'मोक्षशास्त्र' भी है। कैसा अच्छा वह समय था, जब दिगम्बर और श्वेताम्बर आपसमें प्रेमसे रहते हुए धर्मप्रभावनाके कार्य कर रहे थे। श्वेताम्बर उपासक सिद्धय्यके लिये एक निर्ग्रन्थाचार्यका

शास्त्ररचना करना इसी वात्सल्यभावका द्योतक है। यह निर्ग्रन्थाचार्य श्री उमास्वामीके अतिरिक्त और कोई न था।

इसके अतिरिक्त धर्म और संघके लिये उनने क्या क्या किया, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। इस कारण इन महान् आचार्यके विषयमें इस संक्षिप्त वृतान्तसे ही संतोष धारण करना पड़ता है। दिगम्बर संप्रदायमें वह श्रुतिमधुर 'उमास्वामी' और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें वह 'उमास्वाति' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

—बा० कामताप्रसादजी कृत "वीर पाठावलि" से।

विषय--सूची ।

प्रश्नावली तृतीयाध्याय ।

प्रश्नावली चतुर्थ अध्याय ।

विषय	अध्याय	सूत्र
अजीवास्तिकाय	५	१
द्रव्योंकी गणना	५	२-३-३९
द्रव्योंकी विशेषता	५	४–७
द्रव्योंके प्रदेशोंका वर्णन	५	८–११
द्रव्योंके रहनेका स्थान	५	१२–१६
द्रव्योंके उपकारका वर्णन	५	१७-२२
पुद्गलका लक्षण	५	२३
पुद्गलकी पर्याय	५	२४
पुद्गलके भेद	५	२५
स्कन्धोंकी उत्पत्तिके कारण	५	२६–२८
द्रव्यका लक्षण	५	२९
सतका लक्षण	५	३०
नित्यका लक्षण	५	३१
एक ही धर्ममें विरुद्ध-धर्मोंका समन्वय	५	३२
परमाणुओंमें बन्ध होनेका वर्णन	५	३३ ३७
द्रव्यका प्रकारान्तरसे लक्षण	५	३८
कालद्रव्यका वर्णन	५	३९–४०
गुणका लक्षण	५	४१
पर्यायका लक्षण	५	४२

प्रश्नावली पञ्चम अध्याय ।

विषय	अध्याय	सूत्र
योगके भेद व स्वरूप	६	१
आस्रवका स्वरूप	६	२
योगके निमित्तसे आस्रवके भेद	६	३
स्वामीकी अपेक्षा आस्रवके भेद	६	४
साम्परायिक आस्रवके भेद	६	५
आस्रवकी विशेषतामें कारण	६	६
अधिकरणके भेद	६	७
जीवाधिकरणके भेद	६	८
अजीवाधिकरणके भेद	६	९
ज्ञानावरण और दर्शना-वरणके आस्रव	६	१०
असाता वेदनीयके आस्रव	६	११
सातावेदनीयके आस्रव	६	१२
दर्शनमोहनीयके ,,	६	१३
चारित्रमोहनीयके ,,	६	१४

प्रश्नावली षष्ठ अध्याय ।

प्रश्नावली नवम अध्याय।

प्रश्नावली दशम अध्याय।

शुद्धिपत्रक।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१ प्रा.	३	गोमटसार ही है उसका मूलभूत	गोमटसार ही है और उसका मूलभूत
१	१६	पहले देखे सुने हुए	पहले जाने हुए
१३	१८	६ २८८ भेद	६=२८८ भेद
२४	१५	क्रोध माया लोभ	क्रोध मान माया लोभ
२९	१९	पन्चन्द्रियाणि	पंचेन्द्रियाणि
३०	८	व्रति नियत—	निर्वृत नियत
३७	२	जैसे चीक	जैसे चील
३९	३	असंख्या गुणे	असंख्यात गुणे
५२	३	२६ हजार	५६ हजार
६९	१२	२½ पल्य और	२½ पल्य २ पल्य और

चार्ट अवधिज्ञानके भेद (प्रथमाध्याय)

	अशुद्ध	शुद्ध
७	क्षेत्रानुगामी भवनानुगामी	क्षेत्राननुगामी भवाननुगामी

चार्ट नरक व्यवस्था (तृतीयाध्याय)

अशुद्ध	शुद्ध
उत्कृष्ट आयुके स्थानमें ३२ सागर	३३ सागर

कर्म वृक्ष (अष्टमाध्याय)

अशुद्ध	शुद्ध
दर्शनावरण कर्मकी शाखामें फल-दर्शन	अदर्शन

तपके भेद (नवमाध्याय)

अशुद्ध	शुद्ध
स्वाध्यायके भेदोंमें—	वाचना प्रच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश

श्रीवीतरागाय नमः।

श्रीउमास्वामीविरचित-

मोक्षशास्त्र सटीक

प्रथम अध्याय।

मङ्गलाचरण-

दोहा—वीरवदन-हिम गिरि निकसि, फैली जो जग रङ्ग।
नय तरङ्ग युत गङ्ग वह, क्षाले पाप अभङ्ग॥

मोक्षप्राप्तिका उपाय—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः* ॥ १ ॥

अर्थ—(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर (मोक्षमार्गः) मोक्षके मार्ग अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिके उपाय हैं।

सम्यग्ज्ञान—संशय[1] विपर्यय[2] और अनध्यवसाय[3]रहित जीवादि पदार्थोंका जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यक्चारित्र—मिथ्यादर्शन, कषाय, तथा हिंसा आदि

---

* 'मोक्षमार्गः' इस पदमें व्याकरणके नियमके अनुसार बहुवचन होना चाहिये था पर आचार्यने एकवचन ही रखा है उससे सूचित होता है कि सम्यग्दर्शन आदि तीनोंका मिलना ही मोक्षका मार्ग है।

१—अनिश्चित ज्ञान जैसे यह सीप है या चांदी। २—उल्टा ज्ञान जैसे रस्सीमें सांपका ज्ञान। ३—अनिश्चित तथा विकल्परहित ज्ञान, जैसे चलते समय पांवोंसे छुए हुए तृण पत्थर वगैरहमें 'कुछ है' इस प्रकारका ज्ञान।

संसारके कारणोंसे विरक्त होना सम्यक्चारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शनका लक्षण आगेके सूत्रमें कहते हैं ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शनका लक्षण—

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

अर्थ—(तत्त्वार्थश्रद्धानम्) तत्त्व-वस्तुके स्वरूपसहित अर्थ-जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना (सम्यग्दर्शनम्) सम्यग्दर्शन [अस्ति] है।

भावार्थ—चौथे सूत्रमें कहे जानेवाले जीव आदि सात तत्त्वोंका जैसा स्वरूप वीतराग-सर्वज्ञ भगवानने कहा है उसको उसीप्रकार श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है। यह व्यवहार सम्यग्दर्शनका लक्षण है ॥२॥

सम्यग्दर्शनके उत्पत्तिकी अपेक्षा भेद—

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

अर्थ—(तत्) वह सम्यग्दर्शन (निसर्गात्) स्वभावसे (वा) अथवा (अधिगमात्) परके उपदेश आदिसे [उत्पद्यते] उत्पन्न होता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शनके उत्पत्तिकी अपेक्षा दो भेद हैं—१ निसर्गज, २ अधिगमज।

निसर्गज—जो परके उपदेशके विना अपने आप (पूर्वभवके संस्कारसे) उत्पन्न हो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अधिगमज—जो परके उपदेश आदिसे होता है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं* ॥ ३ ॥

---

* उक्त दोनों भेदोंमें मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात कर्मप्रकृतियोंका उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमका होना आवश्यक है।

तत्त्वोंके नाम—

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥

अर्थ—(जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः) जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात (तत्त्वम्) तत्त्व [सन्ति] हैं।

जीव—जिसमें ज्ञानदर्शनरूप चेतना पाई जावे उसे जीव कहते हैं।

अजीव—जिसमें चेतना न पाई जावे उसे अजीव कहते हैं।

आस्रव—बन्धके कारणको आस्रव कहते हैं।

बन्ध—आत्माके प्रदेशोंके साथ कर्मोंका दूध-पानीकी तरह मिलजाना सो बन्ध है।

संवर—आस्रवके रुकनेको संवर कहते हैं।

निर्जरा—आत्माके प्रदेशोंसे पहलेके बन्धे हुए कर्मोंका एक-देश क्षय होना सो निर्जरा है।

मोक्ष—समस्त कर्मोंका बिल्कुल क्षय होजानेको मोक्ष कहते हैं* ॥ ४ ॥

सात तत्व तथा सम्यग्दर्शन आदिके व्यवहारके कारण—

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥

अर्थ—(नामस्थापनाद्रव्यभावतः) नाम, स्थापना, द्रव्य

---

* इन्हीं सात तत्वोंमें पुण्य और पाप मिला देनेसे ९ पदार्थ होजाते हैं। यहां उनका आस्रव और बंधमें अन्तर्भाव होजानेसे अलग कथन नहीं किया ।

और भावसे (तत् न्यासः) उन सात तत्वों तथा सम्यग्दर्शन आदिका लोकव्यवहार [भवति] होता है। नाम आदि चार पदार्थ ही चार निक्षेप[1] कहलाते हैं।

नामनिक्षेप—गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षाके विना ही इच्छानुसार किसीका नाम रखनेको नामनिक्षेप कहते हैं। जैसे किसीका नाम 'जिनदत्त' है। यद्यपि वह जिनदेवके द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोकव्यवहार चलानेके लिये उसका जिनदत्त नाम रखलिया गया है।

स्थापनानिक्षेप—धातु काष्ठ पाषाण आदिकी प्रतिमा तथा अन्य पदार्थोंमें 'यह वह है' इस प्रकार किसीकी कल्पना करना सो स्थापना-निक्षेप है। इसके दो भेद हैं—१ तदाकार स्थापना और २ अतदाकार स्थापना। जिस पदार्थका जैसा आकार है उसमें उसी आकारवालेकी कल्पना करना सो **तदाकार स्थापना** है—जैसे पार्श्वनाथकी प्रतिमामें पार्श्वनाथकी कल्पना करना। और भिन्न आकारवाले पदार्थोंमें किसी भिन्न आकारवालेकी कल्पना करना सो **अतदाकार स्थापना** है। जैसे सतरंजकी गोटोंमें बादशाह' वजीर वगैरहकी कल्पना करना ×।

द्रव्यनिक्षेप—भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्यनिक्षेप है। जैसे पहले कभी पूजा करनेवाले पुरुषको

१—प्रमाण और नयके अनुसार प्रचलित हुए लोकव्यवहारको निक्षेप कहते हैं। × नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेपमें अन्तर—नामनिक्षेपमें पूज्य अपूज्यका व्यवहार नहीं होता पर स्थापनानिक्षेपमें पूज्य अपूज्यका व्यवहार होता है।

वर्तमानमें पुजारी कहना और भविष्यत्में राजा होनेवाले राजपुत्रको राजा कहना।

भावनिक्षेप—केवल वर्तमान पर्यायकी मुख्यतासे अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना सो भावनिक्षेप है। जैसे—काष्टको काष्ट अवस्थामें काष्ट, आगी होने पर आगी और कोयला होजाने पर कोयला कहना॥ ५॥

सम्यग्दर्शन आदि तथा तत्वोंके जाननेके उपाय—

प्रमाणनयैरधिगमः॥ ६॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और जीव आदि तत्वोंका (अधिगमः) ज्ञान (प्रमाणनयैः) प्रमाण और नयोंसे [भवति] होता है।

प्रमाण—जो पदार्थके सर्वदेशको ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं इसके दो भेद हैं। १-प्रत्यक्ष प्रमाण और २-परोक्ष प्रमाण। आत्मा जिस ज्ञानके द्वारा किसी बाह्य निमित्तकी सहायताके विना ही पदार्थोंको स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं और इन्द्रिय तथा प्रकाश आदिकी सहायतासे पदार्थोंको एकदेश जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

नय—जो पदार्थके एकदेशको विषय करे—जाने उसे नय कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ द्रव्यार्थिक, २ पर्यायार्थिक। जो मुख्य रूपसे द्रव्यको विषय करे उसे द्रव्यार्थिक और जो मुख्य रूपसे पर्यायको विषय करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं* ॥ ६॥

---

* इन अवान्तर भेदोंकी विवक्षासे ही सूत्रमें द्विवचनके स्थानपर बहुवचनका प्रयोग किया गया है।

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ।७।

अर्थ—निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इनसे भी जीवादिक तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदिका व्यवहार होता है।

निर्देश—वस्तुके स्वरूपका कथन करना सो निर्देश है।

स्वामित्व—वस्तुके अधिकारको स्वामित्व कहते हैं।

साधन—वस्तुकी उत्पत्तिके कारणको साधन कहते हैं।

अधिकरण—वस्तुके आधारको अधिकरण कहते हैं।

स्थिति—वस्तुके कालकी अवधिको स्थिति कहते हैं।

विधान—वस्तुके भेदोंको विधान कहते हैं॥ ७ ॥×

× ऊपर कहे हुए छह अनुयोगोंसे सम्यग्दर्शनका वर्णन इसप्रकार है-

निर्देश—जीव, आदि तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान करना।

स्वामित्व—जीव।

साधन—साधनके दो भेद हैं-१ अन्तरङ्ग और २ बाह्य। दर्शनमोहके उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमको अन्तरङ्ग साधन कहते हैं, यह सबके एकसा होता है। बाह्य साधन कई प्रकारका होता है जैसे नरक गतिमें तीसरे नरक तक 'जाति स्मरण', 'धर्मश्रवण' और 'दुःखानुभव' ये तीन तथा चौथेसे सातवें तक 'जातिस्मरण' और 'दुःखानुभव' ये दो साधन हैं। तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें 'जातिस्मरण' 'धर्मश्रवण' और 'जिनबिम्ब दर्शन' ये तीन साधन हैं। देवगतिमें बारहवें स्वर्गके पहले 'जातिस्मरण', 'धर्मश्रवण', 'जिनकल्याणक दर्शन' और 'देवर्द्धिदर्शन' ये चार; उनके आगे सोलहवें स्वर्ग तक 'देवर्द्धिदर्शन' को छोड़कर तीन; तथा नवग्रैवेयकोंमें 'जातिस्मरण' और 'धर्मश्रवण' ये दो साधन हैं। इसके आगे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥

अर्थ—(च) और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगोंके द्वारा भी पदार्थका ज्ञान [भवति] होता है।

सत्—वस्तुके अस्तित्वको सत् कहते हैं।

संख्या—वस्तुके परिणामोंकी गिनतीको संख्या कहते हैं।

क्षेत्र—वस्तुके वर्तमान कालके निवासको क्षेत्र कहते हैं।

स्पर्शन—वस्तुके तीनों काल सम्बन्धी निवासको क्षेत्र कहते हैं।

काल—वस्तुके ठहरनेकी मर्यादाको काल कहते हैं।

अंतर—वस्तुके विरहकालको अंतर कहते हैं।

भाव—औपशमिक, क्षायिक आदि परिणामोंको भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्व—अन्य पदार्थकी अपेक्षा किसी वस्तुकी हीनाधि-

अधिकरण—अधिकरणके दो भेद हैं-१ आभ्यन्तर और २ बाह्य। सम्यग्दर्शनका आभ्यन्तर अधिकरण आत्मा है और बाह्य अधिकरण एक रज्जु चौडी और चौदह रज्जु लम्बी त्रस नाडी है।

विधान—सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं-१ औपशमिक, २ क्षायोपशमिक और ३ क्षायिक।

स्थिति—तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है तथा औपशमिक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त है। क्षायोपशमिककी उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर और क्षायिककी संसारमें रहनेकी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर तथा अन्तर्मुहूर्त सहित आठ वर्ष कम दो कोटि वर्ष पूर्व १ की है।

इसीतरह सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तथा जीव आदि तत्त्वोंका भी वर्णन यथायोग्यरूपसे लगा लेना चाहिये।

कता वर्णन करनेको अल्पबहुत्व कहते हैं ॥ ८ ॥

सम्यग्ज्ञानका वर्णन; ज्ञानके भेद और नाम—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि) मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पांच प्रकारके (ज्ञानं) ज्ञान [संति] हैं।

मतिज्ञान—जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे स्पष्ट जाने उसे मतिज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान—जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे मति-ज्ञानके द्वारा जाने हुए पदार्थको विशेप रूपसे जानता है उसे श्रुत-ज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान—जो इन्द्रियोंकी सहायताके विना ही रूपी पदा-र्थोंको द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिये हुए एकदेश स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मनःपर्ययज्ञान—जो किसीकी सहायताके विना ही अन्य पुरुपके मनमें स्थित, रूपी पदार्थोंको एकदेश स्पष्ट जाने उसे मनः-पर्ययज्ञान कहते हैं।

केवलज्ञान—जो सब द्रव्यों तथा उनकी सब पर्यायोंको एक-साथ स्पष्ट जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं ॥ ९ ॥

प्रमाणका लक्षण और भेद—

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

अर्थ—(तत्) ऊपर कहा हुआ पांच प्रकारका ज्ञान ही (प्रमाणे) प्रमाण [अस्ति] है।

मतिज्ञानके ३३६ भेद ।

मतिज्ञान

१ अवग्रह — व्यंजनावग्रह	१ अवग्रह — अर्थावग्रह	२ ईहा	३ अवाय	४ धारणा
बहु	बहु	बहु	बहु	बहु
बहुविध	बहुविध	बहुविध	बहुविध	बहुविध
क्षिप्र	क्षिप्र	क्षिप्र	क्षिप्र	क्षिप्र
अनिःसृत	अनिःसृत	अनिःसृत	अनिःसृत	अनिःसृत
अनुक्त	अनुक्त	अनुक्त	अनुक्त	अनुक्त
ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव,	ध्रुव
एक	एक	एक	एक	एक
एकविध	एकविध	एकविध	एकविध	एकविध
अक्षिप्र	अक्षिप्र	अक्षिप्र	अक्षिप्र	अक्षिप्र
निःसृत	निःसृत	निःसृत	निःसृत	निःसृत
उक्त	उक्त	उक्त	उक्त	उक्त
अध्रुव	अध्रुव	अध्रुव	अध्रुव	अध्रुव
स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन ।
१२×४	१२×६	१२×६	१२×६	१२×६
४८ +	७२ +	७२ +	७२ +	७२ =३३६

अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञानका विस्तार।

लोकविन्दु	आत्मप्रवाद
क्रियाविशाल	सत्यप्रवाद
प्राणावायप्रवाद	ज्ञानप्रवाद
कल्याणवाद	अस्तिनास्तिप्रवाद
विद्यानुवाद	वीर्यानुप्रवाद
प्रत्याख्यानुवाद	अग्रायणी पूर्व
कर्मप्रवाद	उत्पाद पूर्व

सूत्रगत	प्रथमानुयोग
व्याख्याप्रज्ञप्ति	रूपगता
द्वीपसागरप्रज्ञप्ति	आकाशगता
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	मायागता
सूर्यप्रज्ञप्ति	स्थलगता
चन्द्रप्रज्ञप्ति	जलगता

१२ दृष्टिवादाङ्ग

११ विपाकसूत्राङ्ग

१० प्रश्नव्याकरणाङ्ग

९ अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग

८ अन्तःकृद्दशाङ्ग

७ उपासकाध्ययनाङ्ग

६ ज्ञातृधर्मकथाङ्ग

५ व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्ग

४ समवायाङ्ग

३ स्थानाङ्ग

२ सूत्रकृताङ्ग

१ आचाराङ्ग

अवधिज्ञानके भेद ।

मनःपर्ययज्ञानके भेद ।

मनःपर्ययज्ञान

१ ऋजुमति —— ——————— २ विपुलमति
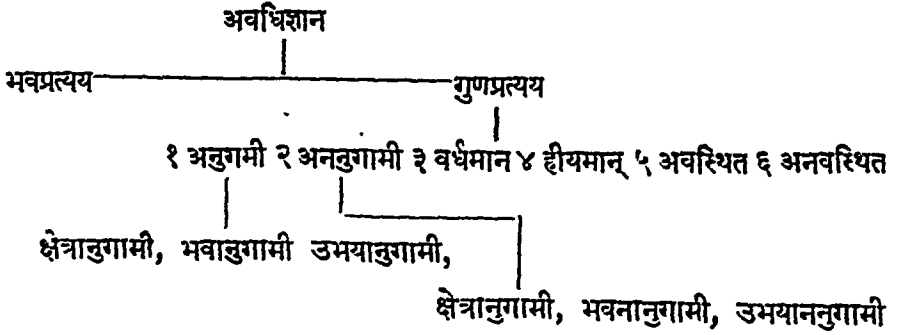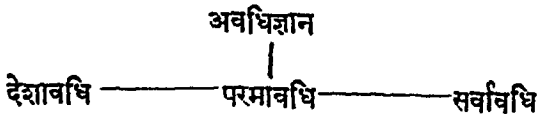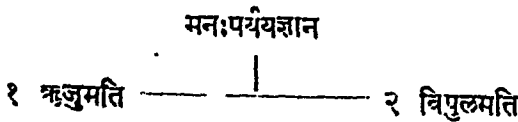
भावार्थ—सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। उसके दो भेद हैं—१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष ॥ १० ॥

परोक्षप्रमाणके भेद—

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

अर्थ—(आद्ये) आदिके दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान (परोक्षम्) परोक्ष प्रमाण [स्तः] ॥ हैं ११ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणके भेद—

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अर्थ—(अन्यत्) शेषके तीन अर्थात् अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ॥ १२ ॥

मतिज्ञानके दूसरे नाम—

मतिःस्मृतिःसंज्ञाचिंताभिनिवोध इत्यनर्थांतरम् १३

अर्थ—मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध इत्यादि अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् मतिज्ञानके ही नामान्तर हैं।

मति—मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालके पदार्थोंका जानना मति है।

स्मृति—पहले देखे सुने हुए पदार्थका वर्तमानमें स्मरण आनेको स्मृति कहते हैं।

संज्ञा—वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर 'यह वही है' इसप्रकार स्मरण और प्रत्यक्षके जोड़रूप ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। इसीका दूसरा नाम प्रत्यभिज्ञान है।

चिन्ता—'जहां जहां धूम होता है वहां वहां अग्नि अवश्य होती है—जैसे रसोई घर' इसप्रकारके व्याप्ति ज्ञानको चिन्ता कहते हैं।

अभिनिवोध—कारणसे कार्यके ज्ञान होनेको अभिनिवोध कहते हैं—जैसे 'उस पहाड़में अग्नि है, क्योंकि उसपर धूम है' इसीका दूसरा नाम अनुमान है।*

मतिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण और स्वरूप—

तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

अर्थ—(तत्) वह मतिज्ञान (इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्) पांच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता है ॥ १४ ॥

मतिज्ञानके भेद—

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

अर्थ—मतिज्ञानके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद हैं।

अवग्रह—+दर्शनके वाद शुक्ल कृष्ण आदि रूपविशेषका ज्ञान होना अवग्रह है।

ईहा—अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थको विशेषरूपसे जाननेकी चेष्टा करना ईहा है। जैसे—वह शुक्लरूप वगुला है या पताका।

---

* ये सब ज्ञान मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं इसलिये निमित्त सामान्यकी अपेक्षासे सबको एक कहा है परन्तु इन सबमें स्वरूप भेद—अर्थभेद अवश्य है।

+ छद्मस्थ जीवोंके ज्ञानके पहले दर्शन होता है। किसी वस्तुकी सत्ता मात्रके देखनेको दर्शन कहते हैं। इसका विषय बहुत सूक्ष्म होता है जो कि उदाहरणसे नहीं समझाया जा सकता।

अवाय—विशेष चिह्न देखनेसे उसका निश्चय हो जाना सो अवाय है। जैसे—उस शुक्ल पदार्थमें पंखोंका फड़फड़ाना उड़ना आदि चिह्न देखनेसे बगुलाका निश्चय होना।

धारणा—अवायसे निश्चित किये हुए पदार्थको कालांतरमें नहीं भूलना सो धारणा है॥ १५॥

अवग्रह आदिके विषयभूत पदार्थ—

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणां १६

अर्थ—(सेतराणाम्–बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणाम्) अपने उलटे भेदों सहित बहु आदि अर्थात् बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनसे उलटे एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त तथा अध्रुव इन बारह प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह ईहादिरूप ज्ञान होता है।

१ बहु—एकसाथ एक पदार्थका बहुत अवग्रहादि होना। जैसे–गेंहूकी राशि देखनेसे बहुतसे गेंहुओंका ज्ञान।

२ बहुविध—बहुत प्रकारके पदार्थोंका अवग्रहादि ज्ञान होना। जैसे–गेंहू, चना, चांवल आदि कई पदार्थोंका ज्ञान।

३ क्षिप्र—शीघ्रतासे पदार्थका ज्ञान होना।

४ अनिःसृत—एकदेशके ज्ञानसे सर्वदेशका ज्ञान होना—जैसे–बाहर निकली हुई सूंड देखकर जलमें डूबे हुए पूरे हाथीका ज्ञान होना।

५ अनुक्त—वचनसे कहे विना अभिप्रायसे जान लेना। जैसे—मुंहकी सूरत तथा हाथ आदिके इशारेसे प्यासे मनुष्यका ज्ञान होना।

६ ध्रुव—बहुत कालतक जैसाका तैसा ज्ञान होते रहना।

७ एक—अल्प वा एक पदार्थका ज्ञान। जैसे—एक गेंहू आदिका ज्ञान।

८ एकविध—एक प्रकारके पदार्थोंका ज्ञान। जैसे—एकसदृश गेंहूओंका ज्ञान।

९ अक्षिप्र—चिरग्रहण—किसी पदार्थको धीरे २ बहुत समयमें जानना।

१० निःसृत—बाहर निकले हुये प्रकट पदार्थोंका ज्ञान होना।

११ उक्त—शब्द सुननेके बाद ज्ञान होना।

१२ अध्रुव—जो क्षण क्षण हीन अधिक होता रहे उसे अध्रुव ज्ञान कहते हैं॥ १६॥

अर्थस्य ॥ १७॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए बहु आदिक बारह भेद पदार्थ—द्रव्यके हैं अर्थात् बहु आदि विशेषण विशिष्ट पदार्थके ही अवग्रह आदि ज्ञान होते हैं ×॥ १७॥

अवग्रह ज्ञानमें विशेषता—

व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८॥

× किसीका मत है कि चक्षु आदि इन्द्रियां, रूप आदि गुणोंको ही जानती हैं क्योंकि इंद्रियोंका सन्निकर्ष (सम्बन्ध) उन्हीके साथ होता है। उस मतको खण्डन करनेकेके लिये ही ग्रन्थकर्ताने 'अर्थस्य' यह सूत्र लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि इंद्रियोंका सम्बन्ध पदार्थके ही साथ होता है, केवल गुणके साथ नहीं होता।

अर्थ—(व्यञ्जनस्य) अप्रकट रूप शब्दादि पदार्थोंका (अवग्रहः) सिर्फ अवग्रह ज्ञान होता है। ईहादिक तीन ज्ञान नहीं होते।

भावार्थ—अवग्रहके दो भेद हैं १-व्यञ्जनावग्रह और २-अर्थावग्रह।

व्यञ्जनावग्रह—अव्यक्त—अप्रकट पदार्थके अवग्रहको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं।

अर्थावग्रह—व्यक्त—प्रकट पदार्थके अवग्रहको अर्थावग्रह कहते हैं ॥ १८ ॥

न चक्षुरनिंद्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

अर्थ—(चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम) नेत्र और मनसे व्यञ्जनावग्रह (न) नहीं होता है * ॥ १९ ॥

श्रुतज्ञानका वर्णनः श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका क्रम और भेद—

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

अर्थ—(श्रुतम) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्[१]) मतिज्ञानपूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञानके पश्चात् होता है। और वह श्रुतज्ञान (द्व्यनेकद्वादशभेदम्) दो अनेक तथा बारह भेदवाला है।

---

* बहु आदि १२ पदार्थोंके अवग्रह आदि ४ प्रकारके ज्ञान, पांच इन्द्रियां और मन इन छहकी सहायतासे होते हैं इस लिये १२×४=४८×६ २८८ भेद हुए। इनमें व्यञ्जनावग्रहके १२×४=४८ भेद जोडनेसे कुल २८८+४८=३३६ मतिज्ञानके प्रभेद होते हैं।

१ पूर्वका अर्थ कारण भी होता है। इसलिये 'मतिपूर्वक इस पदका अर्थ मतिज्ञान है कारण जिसका' यह भी हो सकता है। 'मतिः पूर्वमस्य मतिपूर्वं-मतिकारणमित्यर्थः'

भावार्थ—श्रुतज्ञान मतिज्ञानके बादमें होता है। उसके दो भेद हैं १—अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट। उनमेंसे अंग बाह्यके अनेक भेद हैं और अंग प्रविष्टके—१ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्तिअङ्ग, ६ ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकाध्ययनांग, ८ अन्तकृद्दशांग, ९ अनुत्तरोपपादिकदशांग, १० प्रश्नव्याकरणांग, ११ विपाकसूत्रांग और १२ दृष्टिप्रवादअंग, ये बारह भेद हैं।

अवधिज्ञानका वर्णन—

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्* ॥ २१ ॥

अर्थ—(भवप्रत्ययः) भवप्रत्यय नामका (अवधिः) अवधिज्ञान (देवनारकाणाम्) देव और नारकियोंके होता है।×

भावार्थ—अवधिज्ञानके दो भेद हैं—१ भवप्रत्यय और २ गुणप्रत्यय (क्षायोपशमिक)।

भवप्रत्यय—देव और नरक भव (पर्याय) के कारण जो उत्पन्न हो उसे भवप्रत्यय कहते हैं।

गुणप्रत्यय—जो किसी पर्याय-विशेषकी अपेक्षा न रखकर अवधि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होवे उसे गुणप्रत्यय अथवा क्षयोपशम निमित्तिक अवधिज्ञान कहते हैं।

नोट—यहां इतना स्मरण रखना चाहिये कि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम रहता है। पर वह

---

* तीर्थंकरोंके भी भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है।

× सम्यग्दृष्टि देव नारकियोंके अवधि और मिथ्यादृष्टि देव नारकियोंके कुअवधि होता है।

क्षयोपशम देव और नरक पर्यायमें नियमसे प्रकट हो जाता है।

क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद और स्वामि—

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

अर्थ—(क्षयोपशमनिमित्तः) क्षयोपशम निमित्तक अवधि-ज्ञान (षड्विकल्पः) अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित इसप्रकार छह भेदवाला है और वह (शेषाणाम्) मनुष्य तथा तिर्यञ्चोंके [भवति] होता है।

अनुगामी—जो अवधिज्ञान सूर्यके प्रकाशकी तरह जीवके साथ साथ जावे उसे अनुगामी कहते हैं।

अननुगामी—जो अवधिज्ञान साथ नहीं जावे उसे अननु-गामी कहते हैं।

वर्द्धमान—जो शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह बढ़ता रहे उसे वर्द्धमान कहते हैं।

हीयमान—जो कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह घटता रहे उसे हीयमान कहते हैं।

अवस्थित—जो अवधिज्ञान एकसा रहे—न घटे न बढ़े उसे अवस्थित कहते हैं। जैसे सूर्य अथवा तिल आदिके चिह्न।

अनवस्थित—जो हवासे प्रेरित जलकी तरङ्गोंकी तरह घटता बढ़ता रहे—एकसा न रहे उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं ॥२२॥

मनःपर्यय ज्ञानके भेद—

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

अर्थ—(मनःपर्ययः) मनःपर्ययज्ञान (ऋजुमति विपुलमती) ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है।

ऋजुमति—जो मन वचन कायकी सरलतासे चिन्तित, दूसरेके मनमें स्थित पदार्थको जाने उसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

विपुलमति—जो सरल तथा कुटिलरूप परके मनमें स्थित पदार्थको जाने उसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं ॥ २३ ॥

ऋजुमति और विपुलमतिमें अन्तर—

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥ २४ ॥

अर्थ—(विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम्) परिणामोंकी शुद्धता और अप्रतिपात—केवलज्ञान होनेके पहले नहीं छूटना, इन दो बातोंसे (तद्विशेषः) ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञानमें विशेषता है।

भावार्थ—ऋजुमतिकी अपेक्षा विपुलमतिमें आत्माके भावोंकी शुद्धता अधिक होती है। तथा ऋजुमति होकर छूट भी जाता है पर विपुलमति केवलज्ञानके पहले नहीं छूटता। दोनों भेदोंमें मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमकी अपेक्षा हीनाधिकता रहती है॥ २४॥

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें विशेषता—

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः।२५।

अर्थ—(अवधिमनःपर्यययोः) अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें

(विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः) विशुद्धता, क्षेत्र, स्वामी× और विषयकी अपेक्षा [विशेषः भवति] विशेषता होती है ।

भावार्थ—विशुद्धि आदिकी न्यूनाधिकतासे अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें भेद होता है ॥ २५ ॥

मति और श्रुतज्ञानका विषय—

मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतयोः) मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका (निबन्धः) विषयसम्बन्ध (असर्वपर्यायेषु) सब पर्यायोंसे रहित (द्रव्येषु) जीव पुद्गल आदि सब द्रव्योंमें [अस्ति] है ।

भावार्थ—इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न हुए मति श्रुतज्ञान रूपी अरूपी सभी द्रव्योंको जानते हैं पर उनकी सब पर्यायोंको नहीं जान पाते । इसलिये उनका विषय-सम्बन्ध द्रव्योंकी कुछ पर्यायोंके साथ होता है ॥ २६ ॥

अवधिज्ञानका विषय—

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अर्थ—(अवधेः) अवधिज्ञानका विषय-सम्बन्ध (रूपिषु) *रूपी द्रव्योंमें है अर्थात् अवधिज्ञानरूपी पदार्थोंको जानता है ॥२७॥

× मनःपर्ययज्ञान उत्तम ऋद्धिधारी मुनियोंके ही होता है पर अवधिज्ञान चारों गतियोंके जीवोंके हो सक्ता है ।

* जिसमें रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द पाया जावे ऐसे पुद्गलद्रव्य तथा पुद्गलद्रव्यसे सम्बन्ध रखनेवाले संसारी जीव भी रूपी कहलाते हैं ।

मनःपर्यय ज्ञानका विषय—

तदनंतभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

अर्थ—(तदनन्तभागे) सर्वावधि[1] ज्ञानके विषयभूत रूपी द्रव्यके अनन्तवें भागमें (मनःपर्ययस्य) मनःपर्यय ज्ञानका विषय-सम्बन्ध है।

भावार्थ—सर्वावधि जिस रूपी द्रव्यको जानता है उससे बहुत सूक्ष्म रूपी द्रव्यको मनःपर्यय ज्ञान जानता है ॥ २८ ॥

केवलज्ञानका विषय—

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—(केवलस्य) केवलज्ञानका विषयसम्बन्ध (सर्वद्रव्य-पर्यायेषु) सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायोंमें है। अर्थात् केवल-ज्ञान एकसाथ सब पदार्थोंको जानता है ॥ २९ ॥

एक जीवके एकसाथ कितने ज्ञान हो सकते हैं?—

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ३०

अर्थ—(एकस्मिन्) एक जीवमें (युगपत्) एकसाथ (एकादिनि) एकको आदि लेकर (आचतुर्भ्यः) चार ज्ञानतक (भाज्यानि) विभक्त करनेके योग्य हैं अर्थात् हो सकते हैं।

भावार्थ—यदि एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है। दो हों तो मति श्रुत होते हैं। तीन हों तो मति श्रुत अवधि अथवा मति श्रुत और मनःपर्यय होते हैं। यदि चार हों तो मति श्रुत अवधि और मनःपर्यय ज्ञान होते हैं। एकसाथ पांचों ज्ञान किसी भी जीवके

---

१. अवधिज्ञानका सबसे ऊँचा भेद।

नहीं होते। प्रारम्भके चार ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं और अन्तका केवलज्ञान क्षयसे होता है ॥ ३० ॥

मति श्रुत और अवधिज्ञानमें मिथ्यापन—

मतिश्रुतावधयो विपर्ययाश्च ॥ ३१ ॥

अर्थ—(मतिश्रुतावधयः) मति श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान (विपर्ययाः च) विपर्यय भी होते हैं। ऊपर कहे हुए पांचों ज्ञान सम्यग्ज्ञान होते हैं परन्तु मति श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्या ज्ञान भी होते हैं। इन्हें क्रमसे कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान और कुअवधि ज्ञान (विभङ्गावधि) कहते हैं। *

नोट—इन तीन ज्ञानोंमें मिथ्यापन मिथ्यादर्शनके संसर्गसे होता है। जैसे मीठे दुधमें कडुआपन कडुवी तूंबड़ीके संसर्गसे होता है ॥ ३१॥

प्रश्न—जिस प्रकार पदार्थोंको सम्यग्दृष्टि जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी जानता है फिर सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यग्ज्ञान और मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान क्यों कहलाता है?

उत्तर—

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—(यदृच्छोपलब्धेः) अपनी इच्छानुसार जैसा तैसा जाननेके कारण (सदसतोः) सत् और असत् पदार्थोंमें (अविशेषात्) विशेष ज्ञान न होनेसे (उन्मत्तवत्) पागलपुरुषके ज्ञानकी तरह मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान ही होता है।

भावार्थ—जैसे पागलपुरुष जब स्त्रीको स्त्री और माताको माता

* ५ सम्यक् और ३ मिथ्या इसप्रकार मिलाकर ज्ञानोपयोगके ८ भेद होते हैं।

समझ रहा है तब भी उसका ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाता है क्योंकि उसके माता और स्त्रीके वीचमें कोई स्थिर अन्तर नहीं है। वैसे ही मिथ्यादृष्टि जब पदार्थको ठीक जान रहा है तब भी सत् असत्का निर्णय नहीं होनेसे उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान ही कहलाता है॥३२॥

नयोंके भेद—

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढवं-भूता नयाः॥ ३३ ॥

अर्थ—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये सात नय हैं *।

नैगम नय—जो नय अनिष्पन्न अर्थके सङ्कल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगम नय है। जैसे लकड़ी पानी आदि सामग्री इकट्ठी करनेवाले पुरुषसे कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं तब वह उत्तर देता है कि रोटी वना रहा हूं। यद्यपि उस समय वह रोटी नहीं वना रहा था तथापि नैगम नय उसके इस उत्तरको सत्यार्थ मानता है।

संग्रह नय—जो नय अपनी जातिका विरोध न करते हुए एकपनेसे समस्त पदार्थोंको ग्रहण करता है उसे संग्रह नय कहते हैं। जैसे सत्, द्रव्य, घट इत्यादि।

व्यवहार नय—जो नय संग्रह नयके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थोंके विधिपूर्वक भेद करता है वह व्यवहार नय है। जैसे सत् दो प्रकारका है—द्रव्य और गुण। द्रव्यके ६ भेद हैं—जीव, पुद्गल, धर्म,

---

* वस्तुके अनेक धर्मोंमेंसे किसी एककी मुख्यता कर अन्य धर्मोंका विरोध न करते हुए पदार्थका जानना सो नय है।

अधर्म, आकाश, काल। गुणके दो भेद हैं—सामान्य और विशेष। इस तरह यह नय वहांतक भेद करता जाता है जहांतक भेद हो सक्ते हैं।

ऋजुसूत्र नय—जो सिर्फ वर्तमानकालके पदार्थोंको ग्रहण करे उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं।

शब्द नय—जो नय लिङ्ग संख्या कारक आदिके व्यभिचारको दूर करता है वह शब्द नय है। यह नय लिङ्गादिके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे दार (पुं०) भार्या (स्त्री०) कलत्र (न०) ये तीनों शब्द भिन्न लिङ्गवाले होकर भी एक ही स्त्री पदार्थके वाचक हैं पर यह नय स्त्री पदार्थको लिङ्गके भेदसे तीन भेदरूप मानता है।

समभिरूढ नय—जो नय नाना अर्थको उल्लङ्घनकर एक अर्थको रूढिसे ग्रहण करता है उसे समभिरूढ नय कहते हैं। जैसे वचन आदि अनेक अर्थोंका वाचक गो शब्द किसी प्रकरणमें गाय अर्थका वाचक होता है। यह नय पर्यायके भेदसे अर्थको भी भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे इन्द्र शक्र पुरन्दर ये तीनों शब्द इन्द्रके नाम हैं पर यह नय इन तीनोंके भिन्न २ अर्थ ग्रहण करता है।

एवंभूत—जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उसी क्रियारूप परिणमते हुए पदार्थको जो नय ग्रहण करता है उसे एवंभूत नय कहते हैं। जैसे पुजारीको पूजा करते समय ही पुजारी कहना। *

इति श्री उमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

* नय और निक्षेपमें अन्तरः—नय ज्ञानके भेद हैं और निक्षेप उस ज्ञानके अनुसार किये गये व्यवहारको कहते हैं। इनमें ज्ञान और क्षेत्र विषयी अथवा विषयका भेद है।

प्रश्नावली।

(१) तत्व कममे कम कितने होसकते हैं?
(२) सिर्फ सम्यक्चारित्रसे मोक्ष प्राप्त होसकता या नहीं?
(३) निक्षेप किसे कहते हैं?
(४) नय और प्रमाणमें कितना अन्तर है?
(५) श्रुतज्ञान पहले होता है या मतिज्ञान?
(६) क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद गिनाओ?
(७) मनःपर्यय और अवधिज्ञानमें क्या अन्तर है?
(८) क्या अवधिज्ञानके विना भी मनःपर्ययज्ञान होसकता है?
(९) संग्रह नयका क्या स्वरूप है? उदाहरण सहित बताओ?
(१०) नय और निक्षेपमें क्या अन्तर है?
(११) क्या नय भी मिथ्या होते हैं? यदि होते हैं तो कब?

द्वितीय अध्याय।

जीवके असाधारण भाव—

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ—(जीवस्य) जीवके (औपशमिकक्षायिकौ) औपशमिक और क्षायिक (भावौ) भाव, (च मिश्रः) और मिश्र तथा (औदयिकपारिणामिकौ च) औदयिक और पारिणामिक ये पांचों ही भाव (स्वतत्त्वम्) निजके भाव हैं अर्थात् जीवको छोड़कर अन्य किसीमें नहीं पाये जाते।

उपशम तथा औपशमिक भाव—द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिके प्रकट न होनेको उपशम कहते हैं और कर्मोंके उपशमसे आत्माका जो भाव होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जैसे निर्मलीके संयोगसे पानीकी कीचड़ नीचे बैठ जाती है और पानी साफ हो जाता है।

क्षय तथा क्षायिकभाव—कर्मोंके समूल विनाश होनेको क्षय कहते हैं। जैसे पूर्व उदाहरणमें जो कीचड़ नीचे बैठ गई थी उस कीचड़का बिलकुल अलग हो जाना। कर्मोंके क्षयसे जो भाव होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं।

क्षयोपशम तथा क्षायोपशमिक भाव (मिश्र) का लक्षण—सर्वघातिस्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय तथा उन्हींके आगामी कालमें उदय आनेवाले जो निषेक उनका सदवस्थारूप उपशम और देशघाति-स्पर्द्धकोंके उदय होनेको क्षयोपशम कहते हैं। जैसे पानीकी स्वच्छ-ताको बिल्कुल नष्ट करनेवाले कीचड़के परमणुओंके नीचे बैठ जाने तथा कुछ हलके कीचड़के परमाणुओंके मिले रहनेपर पानीमें स्वच्छाः-स्वच्छ अवस्था होती है। कर्मोंके क्षयोपशमसे जो भाव होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

उदय तथा औदायिक भाव—स्थितिको पूरी करके कर्मोंके

---

१ जो जीवके सम्यक्त्व ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंको पूरी तौरसे घाते उसे सर्वघाती कहते हैं। २ विना फल दिये हुए उदयागत कर्मोंका खिर जाना। ३ एक समयमें जितने कर्म-परमाणु उदयमें आवे उन सबके समूहको निषेक कहते हैं। ४ जो जीवके ज्ञानादि गुणोंको एकदेश घाते।

फल देनेको उदय कहते हैं और कर्मोंके उदयसे जो भाव होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं।

पारिणामिक भाव—जो भाव कर्मोंके उपशम क्षय क्षयोपशम तथा उदयकी अपेक्षा न रखता हुआ आत्माका स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं ॥ १ ॥*

भावोंके भेद—

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए पांचों भाव (यथाक्रमम) क्रमसे (द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः) दो, नव, अठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं ॥ २ ॥

औपशमिकभावके दो भेद—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भावके भेद हैं।

औपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी क्रोध माया लोभ और मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति इन सातों प्रकृतियोंके

---

* ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोंकी उदय, क्षय और क्षयोपशम ये तीन, मोहनीय कर्मकी उदय क्षय क्षयोपशम और उपशम ये चारों तथा अघातिया कर्मोंकी उदय और क्षय ये दो अवस्थाएं होती हैं।

१-अनादि मिथ्यादृष्टि और किसी किसी सादि मिथ्यादृष्टिके अनंतानुबन्धीकी ४ और मिथ्यात्व इन पांच प्रकृतियोंके उपशमसे होता है।

उपशमसे जो सम्यक्त्व होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं।

औपशमिक चारित्र—अप्रत्याख्यानावरणादि चारित्र मोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके उपशमसे जो चारित्र होता है उसे औपशमिक चारित्र कहते हैं॥ ३॥

क्षायिकभावके नौ भेद—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥

अर्थ—केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपयोग, क्षायिकवीर्य, तथा चकारसे क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ये नव क्षायिकभावके भेद हैं *।

केवलज्ञान—जो ज्ञानावरणके क्षयसे हो। केवलदर्शन—जो दर्शनावरणके क्षयसे हो। क्षायिकदान आदि पांच भाव—अंतराय कर्मके ५ भेदोंके क्षयसे होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व—जो ऊपर कही हुई सात प्रकृतियोंके क्षयसे हो। क्षायिक चारित्र—जो ऊपर कही हुई २१ प्रकृतियोंके क्षयसे हो।

क्षायोपशमिकभावके अठारह भेद—

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५॥

अर्थ—(ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयः चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः) मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ये चार ज्ञान, कुमति कुश्रुत कुअवधि ये तीन अज्ञान, चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, क्षायोपश-

---

* इन नौ भावोंको नौ लब्धियां भी कहते हैं।

मिक दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य ये पांच लब्धियां, तथा (सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोप-शमिक चारित्र और संयमासंयम ये अठारह भाव क्षायोपशमिक भाव हैं।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व इन ६ सर्वघाति प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षयसे तथा उन्हींके आगामीकालमें उदयमें आनेवाले जो निषेक उनका सदवस्थारूप उपशम और देशघाति सम्यक्प्रकृतिका उदय होने-पर जो सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसीका दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व भी है।

क्षायोपशमिक चारित्र—अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायका उदयाभावी क्षय तथा उन्हींके निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और संज्वलन तथा नोकषायका यथासंभव उदय होनेपर जो चारित्र होता है उसे क्षायोपशमिक चारित्र कहते हैं। इसीका दूसरा नाम सराग संयम है।

संयमासंयम—अनन्तानुबन्धी आदि ८ प्रकृतियोंका उदयाभावी क्षय और उन्हींके निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम तथा प्रत्याख्यानावरणादि १७ प्रकृतियोंका यथासंभव उदय होनेपर आत्माकी जो विरताविरत अवस्था होती है उसे संयमासंयम कहते हैं॥ ५॥

औदयिकभावके इक्कीस भेद—

गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयता-सिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः॥६॥

अर्थ—नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव ये चार गति, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसक वेद

ये तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और कृष्ण नील कापोत पीत पद्म तथा शुक्ल ये छह [2]लेश्याएं, इसतरह सब मिलाकर औदयिकभावके इक्कीस भेद हैं ॥ ६ ॥

पारिणामिकभावके भेद—

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

अर्थ—जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं।

नोट—सूत्रमें आये हुए च शब्दसे अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि सामान्य गुणोंका भी ग्रहण होता है।

इसतरह जीवके सब मिलाकर कुल २+९+१८+२१+३=५३ त्रेपन भेद होते हैं ॥ ७ ॥

जीवका लक्षण—

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवका (लक्षणम्) लक्षण (उपयोगः) उपयोग [अस्ति] है।

उपयोग— आत्माके चैतन्य गुणसे सम्बन्ध रखनेवाले परिणामको उपयोग कहते हैं। उपयोग जीवका तद्भूत लक्षण है।

उपयोगके भेद—

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

---

१ औदायिकभावमें जो अज्ञानभाव है वह अभावरूप होता है और क्षायोपशमिक अज्ञानभाव मिथ्यादर्शनके कारण दूषित होता है।

२ कषायके उदयसे मिली हुई योगोंकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं।

अर्थ—(सः) वह उपयोग मूलमें (द्विविधः) ज्ञानोपयोग* और दर्शनोपयोगके* भेदसे दो प्रकारका है। फिर क्रमसे (अष्टचतुर्भेदः) आठ और चार भेदसे सहित है अर्थात् ज्ञानोपयोगके मति श्रुत अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति कुश्रुत और कुअवधि ये आठ भेद हैं। एवं दर्शनोपयोगके चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार भेद हैं। इसप्रकार दोनों भेदोंके मिलानेसे उपयोगके बारह भेद हो जाते हैं ॥ ९ ॥

जीवके भेद—

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

अर्थ—वे जीव (संसारिणः) संसारी (च) और (मुक्ताः) मुक्त इसप्रकार दो भेदवाले हैं। कर्म सहित जीवोंको संसारी और कर्मरहित जीवोंको मुक्त कहते हैं ॥ १० ॥

संसारी जीवोंके भेद—

समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥

अर्थ—संसारी जीव समनस्क—सैनी और अमनस्क—असैनीके भेदसे दो प्रकारके होते हैं।

समनस्क—मनसहित जीव।

अमनस्क—मनरहित जीव ॥ ११ ॥×

---

* ज्ञानोपयोग पदार्थको विकल्प सहित जानता है और दर्शनोपयोग विकल्परहित जानता है।

× एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त तकके जीव नियमसे असैनी होते हैं। तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियोंमें सैनी असैनी दोनों होते हैं। शेष तीन गतियोंके जीव नियमसे सैनी ही होते हैं।

संसारी जीवोंके अन्य प्रकारसे भेद—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥

अर्थ—(संसारिणः) संसारी जीव (त्रसस्थावराः) त्रस और स्थावरके भेदसे दो प्रकारके हैं।

स्थावरोंके भेद—

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

अर्थ—पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच प्रकारके स्थावर हैं। इनके सिर्फ स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

स्थावर—स्थावर नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जीवकी अवस्थाविशेषको स्थावर कहते हैं ॥ १३ ॥

त्रस जीवोंके भेद—

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

अर्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

त्रस—त्रस नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जीवकी अवस्थाविशेषको त्रस कहते हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंकी गणना—

पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

अर्थ—सब इन्द्रियां पांच हैं।

इन्द्रिय—जिनसे जीवकी पहिचान हो उन्हें इन्द्रियां कहते हैं ।५।

इन्द्रियोंके मूल भेद—

द्विविधानि ॥ १६ ॥

अर्थ—सब इन्द्रियां द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रियके भेदसे दो दो प्रकारकी हैं ॥ १६ ॥

द्रव्येन्द्रियका स्वरूप—

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येंद्रियम् ॥ १७ ॥

अर्थ—निर्वृति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

निर्वृत्ति—पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे प्रतिनियत संस्थान-वाली पुद्गलकी रचनाविशेषको निर्वृति कहते हैं।

उपकरण—जो निर्वृतिका उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं जैसे—कृष्ण, शुक्ल, मण्डल तथा पलक वगैरह ॥ १७ ॥

भाव इन्द्रियका स्वरूप—

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

अर्थ—लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं।

लब्धि—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं।

उपयोग—जिसके निमित्तसे आत्मा द्रव्येन्द्रियकी निर्वृतिके प्रति व्यापार करता है उसे उपयोग कहते हैं ॥ १८ ॥

पञ्च इन्द्रियोंके नाम—

स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥

अर्थ—स्पर्शन (त्वचा) रसना (जीभ) घ्राण (नाक) चक्षुः (आंख) और श्रोत्र (कान) ये पांच इन्द्रियां हैं ॥ १९ ॥

इन्द्रियोंके विषय—

स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

अर्थ—स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये पांच क्रमसे ऊपर कही हुई पांच इन्द्रियोंके विषय हैं। अर्थात् उक्त इन्द्रियां इन विषयोंको जानती हैं ॥ २० ॥

मनका विषय—

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—(अनिन्द्रियस्य) मनका विषय (श्रुतम्) श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ है। अथवा मनका प्रयोजन श्रुतज्ञान है ॥ २१ ॥

इन्द्रियोंके स्वामी—

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥

अर्थ—(वनस्पत्यन्तानाम्) वनस्पति काय है अन्तमें जिनके ऐसे जीवोंके अर्थात् पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंके (एकम्) एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है ॥ २२ ॥

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।२३।

अर्थ—लट आदि, चिउँटी आदि, भौंरा आदि तथा मनुष्य आदिके क्रमसे एक एक इन्द्रिय बढ़ती हुई हैं। अर्थात् लट आदिके प्रारम्भकी दो, चिउँटी आदिके तीन, भौंरा आदिके चार और मनुष्य आदिके पांचों इन्द्रियां होती हैं ॥ २३ ॥

समनस्कका परिभाषा—

संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

अर्थ—(समनस्काः) मन सहित जीव (संज्ञिनः) संज्ञी[1] कहलाते हैं।

संज्ञा—हित अहितकी परीक्षा तथा गुणदोषका विचार वा स्मरणादिक करनेको संज्ञा कहते हैं ॥ २४ ॥

प्रश्न—जबकि जीवोंकी हिताहितमें प्रवृत्ति मनकी सहायतासे ही होती है तब वे विग्रहगतिमें मनके बिना भी नवीन शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन क्यों करते हैं?

उत्तर—

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

अर्थ—(विग्रहगतौ) विग्रहगतिमें (कर्मयोगः) कार्मण काययोग होता है। उसीकी सहायतासे जीव एक गतिसे दूसरी गतिमें गमन करता है।

विग्रहगति—एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन करना सो विग्रहगति[2] है।

कर्मयोग—ज्ञानावरणादि कर्मोंके समूहको कार्मण कहते हैं उनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलनचलन होता है उसे कर्म-योग अथवा कार्मणयोग कहते हैं ॥ २५ ॥

---

१ संज्ञी जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं। २ "विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः" विग्रह-शरीरके लिये जो गति हो वह विग्रह गति है। "शरीरं वर्ष्म विग्रहः" इत्यमरः।

गमन किस प्रकार होता है?—

अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥

अर्थ—(गतिः) जीव और पुद्गलोंका गमन (अनुश्रेणि) श्रेणिके अनुसार ही होता है।

श्रेणि—लोकके मध्यभागसे ऊपर नीचे तथा तिर्यक् दिशामें क्रमसे सन्निवेश (रचना) को प्राप्त हुए आकाश-प्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणि कहते हैं।

नोट—जो जीव मरकर दूसरे शरीरके लिये विग्रह गतिमें गमन करता है उसीका गमन विग्रह गतिमें श्रेणिके अनुसार होता है, अन्यका नहीं। इसी तरह जो पुद्गलका शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजु गमन करता है उसीका श्रेणिके अनुसार गमन होता है, सब पुद्गलोंका नहीं।

मुक्त जीवोंकी गति—

अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—(जीवस्य[1]) मुक्त जीवकी गति (अविग्रहा) वक्रता-रहित (सीधी) होती है।

भावार्थ—श्रेणिके अनुसार होनेवाली गतिके दो भेद हैं १ विग्रहवती (जिसमें मुड़ना पड़े) और २ अविग्रहा (जिसमें मुड़ना न पड़े)। इनमेंसे कर्मोंका क्षय कर सिद्धशिलाके प्रति गमन करनेवाले जीवोंके अविग्रहा गति होती है ॥ २७ ॥

१—आगेके सूत्रमें संसारी जीवका ग्रहण है, इसलिये यहांपर 'जीवस्य' इस सामान्य पदसे भी मुक्त जीवका ग्रहण होता है।

संसारी जीवोंकी गति और समय—

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

अर्थ—(संसारिणः) संसारी जीवकी गति (चतुर्भ्यः प्राक्) चार समयसे पहले पहले (विग्रहवती च) विग्रहवती और अविग्रहा दोनों प्रकारकी होती है।

भावार्थ—संसारी जीवकी गति मोड़ा रहित भी होतीं है और मोड़ा सहित भी। जो मोड़ा रहित होती है उसमें एक समय लगता है। जिसमें एक मोड़ा लेना पड़ता है उसमें दो समय, जिसमें दो मोड़ा लेना पड़ते हैं उसमें तीन समय और जिसमें तीन मोड़ा लेना पड़ते हैं उसमें चार समय लगते हैं। पर यह जीव चौथे समयमें कहीं न कहीं नवीन शरीर नियमसे धारण कर लेता है, इसलिये विग्रह गतिका समय चार समयके पहले पहले तक कहा गया है।*

अविग्रहा गतिका समय—

एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

अर्थ—(अविग्रहा) मोड़ा रहित गति (एकसमया) एक समय मात्र ही होती है अर्थात् उसमें एक समय ही लगता है ॥२९॥

विग्रहगतिमें आहारक अनाहारककी व्यवस्था—

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥

अर्थ—विग्रह गतिमें जीव एक दो अथवा तीन समयतक अनाहारक रहता है।

---

* उक्त गतियोंके ४ भेद हैं—१ ऋजुगति (इषुगति) २ पाणिमुक्ता गति, ३ लाङ्गलिका गति, ४ गोमूत्रिका गति।

आहार—औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा ६ पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल परमाणुओंके ग्रहणको आहार कहते हैं।

भावार्थ—जबतक जीव ऊपर कहे हुए आहारको ग्रहण नहीं करता तबतक वह अनाहारक कहलाता है। संसारी जीव अविग्रहा गतिमें आहारक ही होता है। किन्तु एक दो और तीन मोड़ावाली गतियोंमें क्रमसे एक दो और तीन समयतक अनाहारक रहता है। चौथे समयमें नियमसे आहारक हो जाता है॥ ३०॥

जन्मके भेद—

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

अर्थ—(जन्म) जन्म, (सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाः) सम्मूर्छन गर्भ और उपपादके भेदसे तीन प्रकारका होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म—अपने शरीरके योग्य पुद्गल परमाणुओंके द्वारा मातापिताके रज और वीर्यके विना ही अवयवोंकी रचना होनेको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं।

गर्भजन्म—स्त्रीके उदरमें रज और वीर्यके मिलनेसे जो जन्म होता है उसे गर्भजन्म कहते हैं।

उपपाद जन्म—माता पिताके रज और वीर्यके विना देव नारकियोंके निश्चित स्थान-विशेष पर उत्पन्न होनेको उपपाद जन्म कहते हैं॥ ३१॥

१-नवीन शरीर धारण करना।

योनियोंके भेद—

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—(सचित्तशीतसंवृताः) सचित्त शीत संवृत (सेतराः) इनसे उल्टी तीन अचित्त उष्ण विवृत (च) और (एकशः) एक एक कर (मिश्राः) क्रमसे मिली हुई तीन सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृत्त, विवृत ये नौ (तद्योनयः) सम्मूर्छन आदि जन्मोंकी योनियां[1] हैं।

सचित्तयोनि—जीव सहित योनिको सचित्तयोनि कहते हैं।

संवृतयोनि—जो किसीके देखनेमें न आवे ऐसे जीवके उत्पत्ति स्थानको संवृतयोनि कहते हैं।

विवृतयोनि—जो सबके देखनेमें आवे उस उत्पत्ति स्थानको विवृतयोनि कहते हैं। शेष योनियोंका अर्थ स्पष्ट है ॥ ३२ ॥

गर्भजन्म किसके होता है?—

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जरायुज अण्डज और पोत इन तीन प्रकारके जीवोंके गर्भ जन्म ही होता है। अथवा गर्भ जन्म उक्त जीवोंके ही होता है।

जरायुज—जालके समान मांस और खूनसे व्याप्त एक प्रकारकी थैलीसे लिपटे हुए जो जीव पैदा होते हैं उन्हें जरायुज कहते हैं—जैसे गाय भैंस मनुष्य वगैरह।

१—जीवोंकी उत्पत्ति—स्थानको योनि कहते हैं। जन्म और योनिमें आधार-आधेयका अन्तर है।

अण्डज—जो जीव अण्डेसे उत्पन्न हों, उन्हें अण्डज कहते हैं, जैसे चील कबूतर वगैरह पक्षी ।

पोत—पैदा होते समय जिन जीवोंपर किसी प्रकारका आवरण नहीं हो और जो पैदा होते ही चलने फिरने लग जावें उन्हें पोत कहते हैं, जैसे हरिण सिंह वगैरह ॥ ३३ ॥

उपपाद जन्म किसके होता है?—

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

अर्थ—(देवनारकाणाम) देव और नारकियोंके (उपपादः) उपपाद जन्म ही होता है अथवा उपपाद जन्म देव और नारकियोंके ही होता है ।

सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है?—

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—(शेषाणाम्) गर्भ और उपपाद जन्मवालोंसे बाकी बचे हुए जीवोंके (सम्मूर्च्छनम्) सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है अथवा सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवोंके ही होता है। *

नोट—एकेन्द्रियसे लेकर असैनी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंका नियमसे सम्मूर्च्छन जन्म होता है । बाकी तिर्यञ्चोंके गर्भ और सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है ॥ ३५ ॥

शरीरोंके नाम व भेद—

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥

* ऊपर कहे हुए तीनों सूत्रोंमें "पार्थ एव धनुर्धरः" की तरह दोनों तरफसे नियम है।

अर्थ—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पांच शरीर हैं।

औदारिक शरीर—स्थूल शरीर (जो दूसरेको छेड़े और दूसरेसे छिड़ सके) को औदारिक शरीर कहते हैं—यह मनुष्य और तिर्यञ्चोंके होता है।

वैक्रियिकशरीर—जिसमें हल्के भारी तथा कई प्रकारके रूप वनानेकी शक्ति हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। यह देव और नारकियोंके होता है। विक्रिया ऋद्धि इससे भिन्न है।

आहारक शरीर—सूक्ष्मपदार्थके निर्णयके लिये वा संयमकी रक्षाके लिये छठवें गुणस्थान वर्त्ती जीवके मस्तकसे एक हाथका जो सफेद रङ्गका पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

तैजस शरीर—जिसके कारण शरीरमें तेज रहे उसे तैजस शरीर कहते हैं।

कार्मणशरीर—ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके समूहको कार्मण शरीर कहते हैं।

शरीरोंकी सूक्ष्मताका वर्णन—

परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—पूर्वसे (परं परम्) आगे आगेके शरीर (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म सूक्ष्म हैं। अर्थात्, औदारिकसे वैक्रियिक, वैक्रियिकसे आहारक, आहारकसे तैजस और तैजससे कार्मण शरीर सूक्ष्म है ॥ ३७ ॥

शरीरोंके प्रदेशोंका विचार—

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ—(प्रदेशतः) प्रदेशोंकी अपेक्षा (तैजसात् प्राक्) तैजस शरीरसे पहले पहलेके शरीर (असंख्येयगुणम्) असंख्यातगुणे हैं।

भावार्थ—औदारिक शरीरकी अपेक्षा असंख्यातगुणे प्रदेश (परमाणु) वैक्रियिकमें हैं और वैक्रियिककी अपेक्षा असंख्यातगुणे आहारकमें हैं।

अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

अर्थ—(परे) बाकीके दो शरीर (अनन्तगुणे) अनन्तगुण परमाणुवाले हैं। अर्थात् आहारक शरीरसे अनन्तगुणे परमाणु तैजस शरीरमें और तैजस शरीरकी अपेक्षा अनन्तगुणे परमाणु कार्मण शरीरमें हैं*।

तैजस और कार्मण शरीरकी विशेषता—

अप्रतिघाते ॥ ४० ॥

अर्थ—तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर प्रतिघात-बाधारहित हैं अर्थात् किसी भी मूर्तिक पदार्थसे न स्वयं रुकते हैं और न किसीको रोकते हैं॥ ४० ॥

अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

अर्थ—और ये दोनों शरीर आत्माके साथ अनादि कालसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं।

नोट—यह कथन सामान्य तैजस और कार्मणकी अपेक्षा है

---

* आगे आगेके शरीरमें प्रदेशोंकी अधिकता होनेपर भी उनका सन्निवेश लोहपिण्डकी तरह सघन होता है। इसलिये वे बाह्यमें अल्प रूप होते हैं।

विशेषकी अपेक्षा पहलेके शरीरोंका सम्बन्ध नष्ट होकर उनके स्थानमें नये नये शरीरोंका सम्बन्ध होता रहता है।

सर्वस्य ॥ ४२ ॥

अर्थ—ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवोंके होते हैं ॥४२॥

एकसाथ एक जीवके कितने शरीर हो सकते हैं?—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्याचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥

अर्थ—(तदादीनि) उन तैजस और कार्मण शरीरको आदि लेकर (युगपद्) एकसाथ (एकस्य) एक जीवके (आचतुर्भ्यः) चार शरीरतक (भाज्यानि) विभक्त करना चाहिये। अर्थात् दो शरीर हों तो तैजस और कार्मण, तीन हों तो तैजस कार्मण और औदारिक अथवा तैजस कार्मण और वैक्रियिक, तथा चार हों तो तैजस कार्मण औदारिक और आहारक अथवा तैजस कार्मण औदारिक और वैक्रियिक[1] होते हैं ॥ ४३ ॥

कार्मण शरीरकी विशेषता—

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—(अन्त्यम्) अन्तका कार्मण शरीर (निरुपभोगम्) उपभोग रहित होता है।

उपभोग—इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादिकके ग्रहण करनेको उपभोग कहते हैं ॥ ४४ ॥

—औदारिक शरीरका लक्षण—

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥

१—लब्धिप्रत्यय वैक्रियिककी अपेक्षा।

५३ भाव ।

भाव

- २ औपशमिक
  - १ सम्यक्त्व, २ चारित्र
- ९ क्षायिक
  - १ केवलज्ञान
  - २ केवलदर्शन
  - ३ क्षायिक दान
  - ४ „ लाभ
  - ५ „ भोग
  - ६ „ उपभोग
  - ७ „ वीर्य
  - ८ „ सम्यक्त्व
  - ९ „ चारित्र
- १८ क्षयोपशमिक
  - ज्ञान
    - १ मति
    - २ श्रुत
    - ३ अवधि
    - ४ मनःपर्यय
  - अज्ञान
    - १ कुमति
    - २ कुश्रुत
    - ३ कुअवधि
  - दर्शन
    - १ चक्षु
    - २ अचक्षु
    - ३ अवधि
  - लब्धि
    - १ दान
    - २ लाभ
    - ३ भोग
    - ४ उपभोग
    - ५ वीर्य
  - क्षा० सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयम
- २१ औदयिक
  - गति
    - १ नरक
    - २ तिर्यञ्च
    - ३ मनुष्य
    - ४ देव
  - कषाय
    - १ क्रोध
    - २ मान
    - ३ माया
    - ४ लोभ
  - लिङ्ग
    - १ स्त्री
    - २ पुरुष
    - ३ नपुंसक
  - मिथ्यादर्शन
  - अज्ञान
  - असंयत
  - असिद्धत्व
  - लेश्या
    - १ कृष्ण
    - २ नील
    - ३ कापोत
    - ४ पीत
    - ५ पद्म
    - ६ शुक्ल
- ३ पारणामिक=५३
  - १ जीवत्व
  - २ भव्यत्व
  - ३ अभव्यात्व

उपयोगके भेद ।

उपयोग

दर्शनोपयोग

१ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन

ज्ञानोपयोग

मतिज्ञान

५ कुमति | ६ सुमति

श्रुतज्ञान

७ कुश्रुत | ८ सुश्रुत

अवधिज्ञान

९ कुअवधि | १० सुअवधि

११ मनःपर्यय

१२ केवलज्ञान

दर्शनोपयोग ४

ज्ञानोपयोग ८

१२

द्वितीयाध्याय—

योनिभेद और उनके स्वामी।

योनि नाम	स्वामी
१ सचित्त	साधारण शरीर
२ अचित्त	देव नारकी
३ अचित्ताचित्त	गर्भज
४ शीत	तेजस्कायिक और देवनारकियोंको छोड़कर
५ उष्ण	तेजस्कायिक
६ शीतोष्ण	देवनारकी
७ संवृत	देव, नारकी, एकेन्द्रिय,
८ विवृत	विकलेन्द्रिय
९ संवृतविवृत	गर्भज

द्वितीयाध्याय—

शरीरभेद--स्वामी और जन्म।

शरीर	स्वामी	जन्म
१ औदारिक	मनुष्य-तिर्यञ्च	गर्भ-समूर्च्छन
२ वैक्रियिक	देव, नारकी [लब्धि-प्रत्ययकी अपेक्षा मनुष्य भी]	उपपाद
३ आहारक	छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि	——
४ तैजस	समस्त संसारी	——
५ कार्माण	समस्त संसारी	——

अर्थ—(गर्भसम्मूर्च्छनजम्) गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे उत्पन्न हुआ शरीर (आद्यम्) औदारिक शरीर कहलाता है ॥ ४५ ॥

वैक्रियिक शरीरका लक्षण—

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—(औपपादिकम्) उपपाद जन्मसे होनेवाला देव नारकियोंका शरीर (वैक्रियिकम्) वैक्रियिक कहलाता है ॥ ४६ ॥

लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

अर्थ—वैक्रियिक शरीर लब्धि निमित्तक भी होता है।

लब्धि—तपोविशेषसे प्राप्त हुई ऋद्धिको लब्धि कहते हैं।

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

अर्थ—तैजस शरीर भी लब्धि प्रत्यय (ऋद्धिनिमित्तक) होता है।

नोट—यह तैजस शुभ अशुभके भेदसे दो प्रकारका होता है।

आहारक शरीरका स्वामी व लक्षण—

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥

अर्थ—(आहारकम्) आहारक शरीर (शुभम्) शुभ है अर्थात् शुभ कार्यको करता है (विशुद्धम्) विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध कर्मका कार्य है (च) और (अव्याघाति) व्याघात-बाधा रहित है तथा (प्रमत्तसंयतस्यैव) प्रमत्तसंयत छठवें गुणस्थान-वर्ती मुनिके ही होता है ॥ ४९ ॥

लिङ्ग (वेद) के स्वामी—

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

अर्थ—नारकी और सम्मूर्च्छन जन्मवाले जीव नपुंसक होते हैं।५०

न देवाः ॥५१॥

अर्थ—देव नपुंसक नहीं होते। अर्थात् देवोंमें स्त्रीलिंग और पुरुषलिंग ये दो ही लिंग होते हैं॥ ५१॥

शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥

अर्थ—शेष बचे हुए मनुष्य और तिर्यंच तीनों वेदवाले होते हैं॥ ५२॥

अकालमृत्यु किनकी नहीं होती?

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायु-षोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३॥

अर्थ—उपपाद जन्मवाले देव नारकी, तद्भवमोक्षगामियोंमें श्रेष्ठ तीर्थकर आदि तथा असंख्यात वर्षोंकी आयुवाले—भोगभूमिके जीव परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् इन जीवोंकी असमयमें मृत्यु नहीं होती। ५३॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥

प्रश्नावली।

(१) जीवके असाधारण भाव कितने हैं?
(२) इस समय तुम्हारे कितने भाव हैं?
(३) विग्रहगतिमें जीव अनाहारक कबतक और क्यों रहता है?
(४) जन्म और योनिमें क्या अन्तर है?

(५) मनुष्योंके कौन कौन जन्म होते हैं ?
(६) तुम्हारे कितने शरीर हैं ?
(७) देवोंके आहारक-शरीर हो सक्ता या नहीं ?
(८) यदि आगे आगेके शरीर अधिक अधिक प्रदेशवाले हैं तो वे अधिक स्थानको क्यों नहीं घेरते ?
(९) आप यह बात किसप्रकार जानते हैं कि अमुक व्यक्तिकी असमयमें मृत्यु हुई है ?
(१०) नारकियोंके कौनसा लिङ्ग होता है ?

तृतीय अध्याय।

अधोलोकका वर्णन।

सात पृथिवियां-नरक—

रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनांबुवाताकाशप्रतिष्टाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥

अर्थ—(रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमः प्रभा) रत्नप्रभा,[1] शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा, ये भूमियां (सप्त) सात हैं और क्रमसे (अधोऽधः) नीचे नीचे (घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः) घनोदधि वातवलय, घनवातवलय, तनु वातवलय और आकाशके आधार हैं।

विशेष—रत्नप्रभा पृथिवीके तीन भाग हैं १ खरभाग, २ पङ्क-

१-रत्नप्रभा आदि पृथिवीके नाम सार्थक हैं। रूढ़िनाम हैं-१ घम्मा, २ वंशा, ३ मेघा, ४ अञ्जना, ५ अरिष्टा, ६ मघवी और ७ माघवी।

भाग और ३ अब्बहुलभाग। उनमेंसे ऊपरके दो भागोंमें व्यन्तर तथा भवनवासी देव रहते हैं। और नीचेके अब्बहुल भागमें नारकी रहते हैं। इस पृथिवीकी कुल मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजनकी है ॥१॥

७ पृथिवियोंमें नरकों (बिलों) की संख्या—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरक-शतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थ—(तासु) उन पृथिवियोंमें (यथाक्रमम्) क्रमसे (त्रिंशत् पञ्चविंशति पञ्चदश दश त्रिपञ्चोनैक नरकशतसहास्राणि) तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख, पांचकम एक लाख (च) और (पञ्च एव) पांच ही नरक-विल हैं। ये विल जमीनमें गड़े हुये ढोलकी पोलके समान होते हैं ॥२॥

नारकियोंके दुःखका वर्णन—

नारका नित्याशुभतरलेश्या[2] परिणाम-देह[3]वेदना[4] विक्रियाः ॥ ३ ॥

१—दो हजार कोश। २—यह द्रव्यलेश्याओंका वर्णन है जो कि आयु पर्यन्त रहती हैं। भाव लेश्याएं अन्तर्मुहूर्तमें बदलती रहती हैं इसलिये, उनका वर्णन नहीं हो सकता। पहली और दूसरी पृथिवीमें कापोतीलेश्या, तीसरी पृथिवीके ऊपरी भागमें कापोती और नीचे भागमें नील, चौथीमें नील, पांचवीके ऊपरी भागमें नील और नीचे भागमें कृष्ण तथा छठवीं और सातवीं पृथिवीमें भी कृष्णलेश्या होती है। ३—देह—पहली पृथिवी-में देहकी ऊंचाई ७ धनुष, ३ हाथ और ६ अंगुल है। नीचेके नरकोंमें क्रम क्रमसे दूनी दूनी ऊंचाई होती जाती है।

४—वेदना—१, २, ३ और ४ पृथिवीमें सिर्फ उष्ण वेदना, ५वीं

अर्थ—नारकी जीव हमेशा ही अत्यन्त अशुभ लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रियाके धारक होते हैं।

परिणाम—स्पर्श रस गन्ध वर्ण और शब्दको परिणाम कहते हैं।

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ—नारकी जीव परस्परमें एक दूसरेको दुःख उत्पन्न करते हैं—वे कुत्तोंकी तरह परस्परमें लड़ते हैं ॥ ४ ॥

संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥

अर्थ—(च) और वे नारकी (चतुर्थ्याः प्राक्) चौथी पृथिवीसे पहले पहले अर्थात् तीसरी पृथिवी पर्यन्त (संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाः) अत्यन्त संक्लिष्ट परिणामोंके धारक अम्बावरीष जातिके असुरकुमार देवोंके द्वारा उत्पन्न किया गया है दुःख जिनको ऐसे होते हैं। अर्थात्—तीसरे नरक तक जाकर अम्बावरीष-असुरकुमार उन्हें पूर्व वैरका स्मरण दिलाकर आपसमें लड़ाते हैं और उन्हें दुःखी देखकर हर्षित होते हैं। उनके इसीप्रकारकी कषायका उदय रहता है।

नरकोंमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण—

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ—(तेषु) उन नरकोंमें (सत्त्वानां) नारकी जीवोंकी

पृथिवीके ऊपरी भागमें उष्ण और नीचे भागमें शीत तथा ६ और ७वीं पृथिवीमें महाशीत शीतकी वेदना है।

(परा स्थितिः) उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे (एक त्रि सप्तदश सप्तदश द्वाविंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तेतीस सागर है।

नोट—नरकोंमें भयानक दुःख होनेपर भी असमयमें मृत्यु नहीं होती ॥ ६ ॥

मध्यलोकका वर्णन।

कुछ द्वीप समुद्रोंके नाम—

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।७।

अर्थ—इस मध्यलोकमें (शुभनामानः) अच्छे अच्छे नामवाले (जम्बूद्वीपलवणादादयः द्वीपसमुद्राः) जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र हैं।

भावार्थ—सबके बीचमें थालीके आकारका जम्बूद्वीप है, उसके चारों तरफ लवणसमुद्र है, उसके चारों तरफ धातकी खण्ड द्वीप है, उसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर समुद्र है। इस प्रकार एक दूसरेको घेरे हुये असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबसे अन्तके द्वीपका नाम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र है ॥ ७ ॥

द्वीप और समुद्रोंका विस्तार और आकार—

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।८।

अर्थ—प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने दूने विस्तारवाले, पहले पहलेके द्वीप समुद्रको घेरे हुए तथा चूड़ीके समान आकारवाले हैं ॥ ८ ॥

जम्बूद्वीपका विस्तार और आकार—

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

अर्थ—(तन्मध्ये) उन सब द्वीप समुद्रोंके बीचमें (मेरुनाभिः) *सुदर्शन मेरु है नाभि जिसकी ऐसा तथा (वृत्तः) थालीके समान गोल और (योजनशतसहस्रविष्कम्भः) एक लाख योजन विस्तार-वाला (जम्बूद्वीपः) जम्बूद्वीप [अस्ति] है ॥ ९ ॥

सात क्षेत्रोंके नामः—

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ—इस जम्बूद्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं ॥ १० ॥

---

*सुदर्शन मेरुकी ऊंचाई एक लाख योजनकी है। जिसमें १ हजार योजन नीचे जमीनमें और ९९ हजार योजन ऊपर है। इसके सिवाय ४० योजनकी चूलिका है। सब अकृत्रिम चीजोंके नापमें २००० कोशका बड़ा योजन लिया जाता है।

१ किसी भी गोल चीजकी परिधि उसकी गोलाईसे कुछ अधिक तिगुनी हुआ करती है! इस विषयसे जम्बूद्वीपकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एकसौ अठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुलसे कुछ अधिक है।

२—इस द्वीपके विदेह क्षेत्रान्तर्गत 'उत्तर कुरु भोगभूमि' में अनादि निधन पृथिवीकाय और अकृत्रिम जम्बु-जामुनका वृक्ष है इसीलिये इस द्वीपका नाम जम्बूद्वीप पड़ा है।

क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले ६ कुलाचलोंके नाम—

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

अर्थ—(तद्विभाजिनः) उन सात क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले (पूर्वापरायताः) पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे (हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणः) हिमवत, महाहिमवत्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरिन् ये छह (वर्षधरपर्वताः) वर्षधर—कुलाचल पर्वत हैं। वर्ष=क्षेत्र ॥ १० ॥

कुलाचलोंके वर्ण—

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए पर्वत क्रमसे सुवर्ण, चांदी, ताया हुआ सुवर्ण वैडूर्य (नील) मणि, चांदी और सुवर्ण जैसे पीले हैं ॥१२॥

कुलाचलोंका आकार—

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः १३

अर्थ—वे पर्वत (मणिविचित्रपार्श्वाः) कई तरहके मणियोंसे चित्रविचित्र हैं तट जिनके ऐसे तथा (उपरि मूले च) ऊपर नीचे और मध्यमें (तुल्यविस्ताराः) एकसमान विस्तारवाले हैं ॥१३॥

कुलाचलोंपर स्थित सरोवरोंके नाम—

पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरिमहापुंडरीकपुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

अर्थ—(तेषाम् उपरि) उन पर्वतोंके ऊपर क्रमसे (पद्म महापद्म तिगिञ्छ केशरि महापुण्डरीक पुण्डरीक ह्रदाः) पद्म,

ह्रदोंका विस्तार आदि ।

नंबर	ह्रद नाम	स्थान	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	कमल	देवी
१	पद्म	हिमवत्	१००० योजन	५०० योजन	१० योजन	१ योजन	श्री
२	महापद्म	महाहिमवत्	२००० योजन	१००० योजन	२० योजन	२ योजन	ह्री
३	तिगिञ्छ	निषध	४००० योजन	२००० योजन	४० योजन	४ योजन	धृति
४	केशरी [केशरिन्]	नील	४००० योजन	२००० योजन	४० योजन	४ योजन	कीर्ति
५	महापुण्डरीक	रुक्मिन्	२००० योजन	१००० योजन	२० योजन	२ योजन	बुद्धि
६	पुण्डरीक	शिखरिन्	१००० योजन	५०० योजन	१० योजन	१ योजन	लक्ष्मी

नरक व्यवस्था ।

नं०	पृथिवी	प्रस्तार	विल	शरीरकी ऊंचाई	लेश्या	शीतोष्ण वेदना	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
१	रत्नप्रभा	१३	३००००००	७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल	जघन्य कापोत	उष्णवेदना	१ सागर	दश हजार वर्ष
२	शर्कराप्रभा	११	२५०००००	१५ धनुष २ हाथ १२ अंगुल	मध्यम कापोत	,,	३ सागर	१ सागर
३	वालुकाप्रभा	९	१५०००००	३१ धनुष १ हाथ	उत्कृष्ट कापोत जघन्य नील	,,	७ सागर	३ सागर
४	पङ्कप्रभा	७	१००००००	६२ धनुष २ हाथ	मध्यम नील	,,	१० सागर	७ सागर
५	धूमप्रभा	५	३००००००	१२५ धनुष	उत्कृष्ट नील जघन्य कृष्ण	उष्ण शीत	१७ सागर	१० सागर
६	तमःप्रभा	३	९९९९५	२५० धनुष	मध्यम कृष्ण	शीत	२२ सागर	१७ सागर
७	महातमःप्रभा	१	५	५०० धनुष	उत्कृष्ट कृष्ण	शीत	३३ सागर	२२ सागर

नोट—१ यह लेश्याका क्रम 'स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः । भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः' इस सर्वार्थसिद्धिके मतानुसार लिखा है। गोम्मटसार तथा धवलसिद्धान्तके मतानुसार सभी नारकियोंके विग्रह गतिमें शुक्ल, अपर्याप्तक अवस्थामें कापोत, तथा पर्याप्तक अवस्थामें कृष्ण द्रव्य लेश्या होती है। और भावलेश्याएं, कृष्ण, नील तथा कापोत होती हैं जिनका क्रम ऊपर चार्टमें बतलाया गया है।

महापद्म, तिगिंच्छ, केशरिन्, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामके ह्रद-सरोवर हैं ॥ १४ ॥

प्रथम सरोवरकी लम्बाई चौड़ाई—

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कंभो ह्रदः ॥१५॥

अर्थ—(प्रथमह्रदः) पहला सरोवर (योजनसहस्रायामः) एक हजार योजन लम्बा और (तदर्द्धविष्कम्भः) लम्बाईसे आधा अर्थात् पांचसौ योजन विस्तारवाला है ॥ १५ ॥

प्रथम सरोवरकी गहराई—

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अर्थ—पहला सरोवर दश योजन गहरा है।

उसके मध्यमें क्या है?—

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

अर्थ—उसके बीचमें एक योजन विस्तारवाला कमल है ॥१७॥

महापद्म आदि सरोवर तथा उनमें रहनेवाले कमलोंका प्रमाण—

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

अर्थ—आगेके सरोवर और कमल क्रमसे प्रथम सरोवर तथा उसके कमलसे दूने दूने विस्तारवाले हैं।

नोट—यह दूने दूनेका क्रम तिगिंच्छ नामक तीसरे सरोवर तक ही है। उसके आगेके तीन सरोवर और तीन कमल दक्षिणके सरोवर और कमलोंके समान विस्तारवाले हैं ॥ १८ ॥

कमलोंमें रहनेवाली छह देवियां—

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥

अर्थ—(पल्योपमस्थितयः) एक पल्यकी आयुवाली तथा (ससामानिकपरिषत्काः) सामानिक और पारिषद जातिके देवोंसे सहित (श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः) श्री ह्री धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी (देव्यः) देवियां क्रमसे (तन्निवासिन्यः) उन सरोवरोंके कमलों पर निवास करती हैं।*

चौदह महानदियोंके नाम—

गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

अर्थ—गङ्गा-सिन्धु, रोहित् रोहितास्या, हरित्-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नारी नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा ये चौदह नदियां जम्बूद्वीपके पूर्वोक्त सात क्षेत्रोंके बीचमें बहती हैं।

विशेष—पहले पद्म और छठवें पुण्डरीक नामक सरोवरसे क्रमसे आदि और अन्तकी तीन तीन नदियां निकली हैं तथा बाकीके सरोवरोंसे दो दो नदियां निकली हैं। नदियों और क्षेत्रका क्रम

---

* उक्त कमलोंकी कर्णिकाके मध्यभागमें एक कोश लम्बे आधकोश चौड़े और कुछ कम एक कोश ऊंचे सफेद रंगके भवन बने हुए हैं उन्हींमें ये देवियां रहती हैं। तथा उन्हीं तालावोंमें जो अन्य परिवार कमल हैं उनपर सामानिक और पारिषद देव रहते हैं।

इस प्रकार है—भरतमें—गङ्गा-सिन्धु, हैमवतमें—रोहित्-रोहितास्या, हरिमें—हरित्-हरिकान्ता, विदेहमें—सीता-सीतोदा, रम्यकमें—नारी-नरकान्ता, हैरण्यवतमें—सुवर्णकूला-रूप्यकूला और ऐरावतमें रक्ता-रक्तोदा बहती हैं ॥ २० ॥

नदियोंके बहनेका क्रम—

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

अर्थ—सूत्रके क्रमानुसार गङ्गा-सिन्धु इत्यादि दो दो नदियोंमेंसे प्रथम नम्बरवाली नदियां पूर्वसमुद्रमें जाती हैं। जैसे गङ्गा-सिन्धुमें गङ्गा आदि ॥ २१ ॥

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

अर्थ—बाकी बची हुई सात नदियां पश्चिमकी ओर जाती हैं जैसे—गङ्गा-सिन्धुमें सिन्धु आदि ॥ २२ ॥

महानदियोंकी सहायक नदियां—

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः २३

अर्थ—गङ्गा सिन्धु आदि नदियोंके युगल चौदह हजार सहायक नदियोंसे घिरे हुए हैं।

नोट—सहायक नदियोंका क्रम भी विदेहक्षेत्र तक आगे आगेके युगलोंमें पूर्वके युगलोंसे दूना दूना है। और उत्तरके तीन क्षेत्रोंमें दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान है ॥ २३ ॥

नदी युगल—	सहायक नदी संख्या—
गङ्गा-सिन्धु	१४ हजार
रोहित्-रोहितास्या	२८ हजार

हरित्-हरिकान्ता	५६ हजार
सीता-सीतोदा	१ लाख बारह हजार
नारी-नरकान्ता	२६ हजार
सुवर्णकूला-रूप्यकूला	२८ हजार
रक्ता-रक्तोदा	१४ हजार

भरतक्षेत्रका विस्तार—

भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—(भरतः) भरतक्षेत्र (षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः) पांचसौ छब्बीस योजन विस्तारवाला (च) और (योजनस्य) एक योजनके (एकोनविंशतिभागाः) उन्नीस भागमेंसे (षट्) छह भाग अधिक है।

भावार्थ—भरतक्षेत्रका विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है ॥ २४ ॥*

आगेके क्षेत्र और पर्वतोंका विस्तार—

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ ॥

अर्थ—(विदेहान्ताः) विदेहक्षेत्र पर्यन्तके (वर्षधरवर्षाः)

---

* भरत और ऐरावत क्षेत्रके बीचमें पूर्व व पश्चिम तक लम्बे विजयार्ध पर्वत हैं। जिनसे गङ्गासिन्धु और रक्तारक्तोदा नदियोंके कारण दोनों क्षेत्रोंके छह छह खण्ड होजाते हैं। उनमें बीचका आर्यखण्ड और शेपके पांच म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं। तीर्थंकर आदि पदवीधारी पुरुष भरत ऐरावतके आर्यखण्डमें और विदेह क्षेत्रोंमें अवतार लेते हैं।

पर्वत और क्षेत्र (तद्द्विगुणद्विगुणाः) भरतक्षेत्रसे दूने दूने विस्तार-वाले हैं ॥ २५ ॥

विदेह क्षेत्रके आगेके पर्वत और क्षेत्रोंका विस्तार—

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

अर्थ—विदेह क्षेत्रसे उत्तरके तीन पर्वत और तीन क्षेत्र दक्षिणके पर्वत और क्षेत्रोंके समान विस्तारवाले हैं।

इनका क्रम इस प्रकार है—

क्षेत्र और पर्वत—	विस्तार—		ऊंचाई—	गहराई
भरत क्षेत्र	५२६ ६/१९	योजन	+	+
हिमवत् कुलाचल	१०५२ १२/१९	,,	१०० यो.	२५ यो.
हैमवत् क्षेत्र	२१०५ ५/१९	,,	+	+
महाहिमवत्कुलाचल	४२१० १०/१९	,,	२०० यो.	५० यो.
हरि क्षेत्र	८४२१ १/१९	,,	+	+
निषध कुलाचल	१६८४२ २/१९	,,	४०० यो.	१०० यो.
विदेह क्षेत्र	३३६८४ ४/१९	,,	+	+
नील कुलाचल	१६८४२ २/१९	,,	४०० यो.	१०० यो.
रम्यक क्षेत्र	८४२१ १/१९	,,	+	+
रुक्मि कुलाचल	४२१० १०/१९	,,	२०० यो.	५० यो.
हैरण्यवत क्षेत्र	२१०५ ५/१९	,,	+	+
शिखरी कुलाचल	१०५२ १२/१९	,,	१०० यो.	२५ यो.
ऐरावत क्षेत्र	५२६ ६/१९	,,	+	+

भरत और ऐरावत क्षेत्रमें कालचक्रका परिवर्तन—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामु-त्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥

अर्थ—(षट्समयाभ्याम) छह कालोंसे युक्त (उत्सर्पिण्य-वसर्पिणीभ्याम्) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके द्वारा (भरतैरावतयोः) भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जीवोंके अनुभव आदिकी (वृद्धिह्रासौ) बढ़ती तथा न्यूनता होती रहती है।

भावार्थ—बीस कोड़ाकोड़ी सागरका एक कल्पकाल होता है। उसके दो भेद हैं—१ उत्सर्पिणी—जिसमें जीवोंके ज्ञान आदिकी वृद्धि होती है और २ अवसर्पिणी—जिसमें जीवोंके ज्ञान आदिका ह्रास होता है। अवसर्पिणीके छह भेद हैं—१ सुषमसुषमा, २ सुषमा, ३ सुषमदुःषमा, ४ दुःषमसुषमा, ५ दुःषमा और ६ अतिदुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी अतिदुःषमाको आदि लेकर छह भेद हैं।

इन छह भेदोंके कालका नियम इस प्रकार है—

१ सुषमसुषमा—चार कोड़ाकोड़ी सागर, २ सुषमा—तीन कोड़ाकोड़ी सागर, ३ सुषमदुःषमा—दो कोड़ाकोड़ी सागर, ४ दुःषम-सुषमा—ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, ५ दुःषमा—इक्कीस हजार वर्ष, ६ अतिदुःषमा—इक्कीस हजार वर्ष। भरत और ऐरावत क्षेत्रमें इन छह भेदों सहित उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीका परिवर्तन होता रहता है। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जानेके बाद एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है ॥ २७ ॥

नोट—भरत और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी म्लेच्छखण्डों तथा

विजयार्ध पर्वतकी श्रेणियोंमें अवसर्पिणी कालके समय चतुर्थ कालके आदिसे लेकर अन्ततक परिवर्तन होता है और उत्सर्पिणी कालके समय तृतीय कालके अन्तसे लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। इनमें आर्यखण्डोंकी तरह छहों कालोंका परिवर्तन नहीं होता और न इनमें प्रलय काल पड़ता है।

अन्य भूमियोंकी व्यवस्था—

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—(ताभ्याम्) भरत और ऐरावतके सिवाय (अपराः) अन्य (भूमियां) क्षेत्र (अवस्थिताः) एक ही अवस्थामें रहते हैं—इनमें कालका परिवर्तन नहीं होता ॥ २८ ॥

हैमवतक आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था—

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षक-देवकुरवकाः ॥ २९ ॥

अर्थ—हिमवान्, हारिवर्षक और देवकुरु (विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य तिर्यञ्च क्रमसे एक पल्य, दो पल्य और तीन पल्यकी आयुवाले होते हैं।* ॥ २९ ॥

हैरण्यवतक आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था—

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ—उत्तरके क्षेत्रोंमें रहनेवाले मनुष्य भी हिमवान् आदिके मनुष्योंके समान आयुवाले होते हैं।

---

* इन तीन क्षेत्रोंमें मनुष्योंके शरीरकी ऊँचाई क्रमसे एक, दो और तीन कोशकी होती है। शरीरका रङ्ग क्रमसे नील, शुक्ल और पीत होता है।

भावार्थ—हैरण्यवतक्षेत्रकी रचना, हैमवतक्षेत्रके समान, रम्यक क्षेत्रकी रचना हरिक्षेत्रके समान और उत्तरकुरु (विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत स्थानविशेष) की रचना देवकुरुके समान है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्यरूप तीनों भोग भूमियोंके दो दो क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीपमें ६ भोग भूमियां और अढ़ाई द्वीपमें कुल ३० भोगभूमियां हैं ॥३०॥*

विदेहक्षेत्रमें आयुकी व्यवस्था—

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—विदेहक्षेत्रोंमें मनुष्य और तिर्यञ्च संख्यात वर्षकी आयुवाले होते हैं ॥ ३१ ॥ +

भरतक्षेत्रका अन्य प्रकारसे विस्तार—

भरतस्य विष्कम्भो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

अर्थ—भरतक्षेत्रका विस्तार जम्बूद्वीपके एकसौ नब्बेवां भाग है।

नोट—२४ वें सूत्रमें भरतक्षेत्रका जो विस्तार बतलाया है उसमें और इसमें कोई भेद नहीं है। सिर्फ कथन करनेका प्रकार दूसरा है। यदि एक लाखके एकसौ नब्बे हिस्से किये जायें तो उनमें हरएकका प्रमाण ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन होगा ॥ ३२ ॥

---

* जिनमें सब तरहकी भोगोपभोगकी सामग्री कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती है उन्हें भोगभूमि कहते हैं।

+ विदेहक्षेत्रमें ऊंचाई पांचसो धनुष और आयु १ करोड़ वर्ष पूर्वकी होती है।

काल-चक्र।
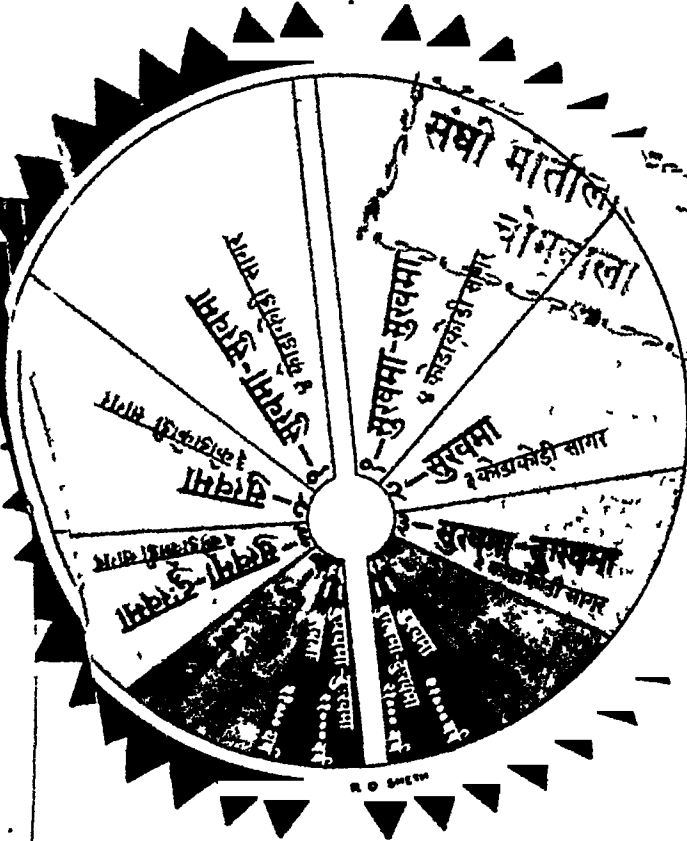
[युग-परिवर्तन-चित्र]

"जैनविजय" प्रेस-सूरत।

धातकीखण्डका वर्णन—

द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

अर्थ—धातकीखण्ड* नामक दूसरे द्वीपमें क्षेत्र, कुलाचल, मेरु, नदी आदि समस्त पदार्थोंकी रचना जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी है ॥३३॥

पुष्कर द्वीपका वर्णन—

पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

अर्थ—पुष्करार्द्ध द्वीपमें भी जम्बूद्वीपकी अपेक्षा सब रचना दूनी दूनी है।

विशेष—पुष्करवर द्वीपका विस्तार १६ लाख योजन है, उसके ठीक बीचमें चूड़ीके आकार मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे इस द्वीपके दो हिस्से होगये हैं। पूर्वार्धमें सब रचना धातकीखण्डके समान है और जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी है। इस द्वीपके उत्तरकुरु प्रांतमें एक पुष्कर (कमल) है, उसके संयोगसे ही इसका नाम पुष्करवर द्वीप पड़ा है ॥ ३४ ॥

मनुष्य क्षेत्र—

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतके पहले अर्थात् अढ़ाईद्वीपमें[१] ही मनुष्य

---

* धातकीखण्ड द्वीप लवणसमुद्रको घेरे हुए है। इसका विस्तार चार लाख योजन है। इसके उत्तरकुरु प्रांतमें धातकी (आंवला) का वृक्ष है, उसके संयोगसे इसका नाम धातकी खण्ड पड़ा है।

१—जम्बूद्वीप लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध इतना क्षेत्र अढ़ाई द्वीप कहलाता है। इसका विस्तार ४५ लाख योजन है।

होते हैं। मानुषोत्तर पर्वतके आगे ऋद्धिधारी मुनीश्वर तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते ॥ ३५ ॥

मनुष्योंके भेद—

आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—आर्य और म्लेच्छके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके होते हैं।

आर्य—जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न हों तथा गुणी पुरुष जिनकी सेवा करें उन्हें आर्य कहते हैं।

म्लेच्छ—जो आचार विचारसे भ्रष्ट हों तथा जिन्हें धर्म कर्मका कुछ विवेक न हो उन्हें म्लेच्छ कहते हैं॥ ३६ ॥

कर्मभूमिका वर्णन—

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ—पांच मेरु सम्बन्धी [१]५ भरत, ५ ऐरावत और देवकुरु-उतरकुरुको छोड़कर ५ विदेह, इस तरह अढ़ाईद्वीपमें कुल १५ कर्मभूमियां हैं।

कर्मभूमि—जहांपर असि, मषि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसे कर्मभूमि कहते हैं॥ ३७ ॥

मनुष्योंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति—

नृस्थिती पराऽवरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

१—जम्बूद्वीपका १, धातकीखण्डके २ और पुष्करार्द्धके २ इस प्रकार कुल ५ मेरु होते हैं।

अर्थ—मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है ॥ ३८ ॥

तिर्यञ्चोंकी स्थिति—

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

अर्थ—तिर्यञ्चोंकी भी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति क्रमसे तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्तकी है।

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली।

(१) नारकियोंके दुःखोंका वर्णन कर उनकी उत्कृष्ट आयु बताओ।
(२) जम्बूद्वीपकी परिधि कितनी है ?
(३) कर्मभूमि और भोगभूमिके क्षेत्र बताओ।
(४) धातकी खण्ड द्वीपका चित्र बनाओ।
(५) गङ्गा, सीतोदा, रक्तोदा और हरिकान्ता नदियोंके निकलने तथा बहनेके स्थान बताओ।
(६) मानुषोत्तर पर्वत कहां है ?
(७) मनुष्योंके भेद बताकर उनकी उत्कृष्ट और जघन्य आयु बताओ।
(८) आप किस क्षेत्रमें रहते हैं ?
(९) जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रका नकशा बनाओ।
(१०) तीर्थङ्कर किस किस क्षेत्रमें जन्म लेते हैं ?

चतुर्थ अध्याय।

देवोंके भेद—

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥

अर्थ—देव चार समूहवाले हैं अर्थात् देवोंके चार भेद हैं—१ भवनवासी, २ व्यन्तर, ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक।

देव—जो देवगति नाम कर्मके उदयकी सामर्थ्यसे नाना द्वीप समुद्र तथा पर्वत आदि रमणीक स्थानों पर क्रीड़ा करें वे देव कहलाते हैं॥ १ ॥

भवनत्रिक देवोंमें लेश्याका विभाग—

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

अर्थ—पहलेके तीन निकायोंमें पीतान्त अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्याएं होती हैं ॥ २ ॥

चार निकायोंके प्रभेद—

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यंताः ॥३॥

अर्थ—कल्पोपपन्न (सोलहवें स्वर्गतकके देव) पर्यन्त उक्त चार प्रकारके देवोंके क्रमसे दश आठ पांच और बारह भेद हैं ॥३॥

चार प्रकारके देवोंके सामान्य भेद—

इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

अर्थ—उक्त चार प्रकारके देवोंमें प्रत्येकके इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दश भेद होते हैं।

इन्द्र—जो देव दूसरे देवोंमें नहीं रहनेवाली अणिमा आदि ऋद्धियोंसे सहित हो उसे इन्द्र कहते हैं। ये देव राजाके तुल्य होते हैं।

सामानिक—जिनकी आयु वीर्य भोग उपभोग आदि इन्द्रके तुल्य हो पर आज्ञारूप ऐश्वर्यसे रहित हों उन्हें सामानिक कहते हैं। ये देव पिता—गुरुके तुल्य होते हैं।

त्रायस्त्रिंश—जो देव मन्त्री पुरोहितके स्थानापन्न हों उन्हें त्रायस्त्रिंश कहते हैं। ये देव एक इन्द्रकी सभामें तेतीस ही होते हैं।

पारिषद—जो देव इन्द्रकी सभामें बैठनेवाले हों उन्हें पारिषद कहते हैं।

आत्मरक्ष—जो देव अङ्गरक्षकके सदृश होते हैं उन्हें आत्मरक्ष कहते हैं।

लोकपाल—जो देव कोतवालके समान लोकका पालन करते हैं उन्हें लोकपाल कहते हैं।

अनीक—जो देव पदाति आदि सात तरहकी सेनामें विभक्त रहते हैं वे अनीक कहलाते हैं।

प्रकीर्णक—जो देव नगरवासियोंके समान हों उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

आभियोग्य—जो देव दासोंके समान सवारी आदिके काम आवें वे आभियोग्य हैं।

किल्विषिक—जो देव चांडालादिकी तरह नीच काम करनेवाले हों उन्हें किल्विषिक कहते हैं।

व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें इन्द्र आदि भेदोंकी विशेषता—

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः॥५॥

अर्थ—व्यन्तर और ज्योतिषी देव त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल भेदसे रहित हैं ॥ ५ ॥

देवोंमें इन्द्रोंकी व्यवस्था—

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

अर्थ—भवनवासी और व्यन्तरोंमें प्रत्येक भेदमें दो दो इन्द्र होते हैं।

भावार्थ—भवनवासियोंके दश भेदोंमें वीस और व्यन्तरोंके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र होते हैं। तथा इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं॥६॥

देवोंमें स्त्रीसुखका वर्णन—

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥

अर्थ—(आ ऐशानात्) ऐशान स्वर्ग पर्यन्तके देव अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे स्वर्गके देव (कायप्रवीचाराः) मनुष्योंके समान शरीरसे कामसेवन करते हैं। प्रवीचार=कामसेवन ॥ ७ ॥

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥

अर्थ—शेष स्वर्गके देव, देवियोंके स्पर्शसे रूप देखनेसे, शब्द सुननेसे और मनके विचारनेसे कामसेवन करते हैं। अर्थात् तीसरे और चौथे स्वर्गके देव देवाङ्गनाओंके स्पर्शसे; पांचवें, छठवें, सातवें आठवें स्वर्गके देव, देवियोंके रूप देखनेसे; नौवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गके देव, देवियोंके शब्द सुननेसे तथा तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्गके देव, देवाङ्गनाओंके मनके विचारने मात्रसे तृप्त हो जाते हैं—उनकी कामेच्छा शान्त हो जाती है ॥ ८ ॥

परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥

अर्थ—सोलहवें स्वर्गसे आगेके देव कामसेवनसे रहित होते हैं। इनके कामेच्छा ही उत्पन्न नहीं होती, तब उसके प्रतिकारसे क्या प्रयोजन ? ॥ १० ॥

भवनवासियोंके दश भेद—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

अर्थ—भवनवासी देवोंके असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ये दश भेद हैं।*

व्यन्तरदेवोंके आठ भेद—

व्यन्तराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

अर्थ—व्यन्तरदेव—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ तरहके होते हैं * ॥ ११ ॥

ज्योतिषीदेवोंके पांच भेद—

ज्योतिष्काः सूर्याचंद्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥

---

* असुरकुमारको छोड़कर ९ प्रकारके भवनवासी देव और राक्षसको छोड़कर ७ प्रकारके व्यंतर देव रत्नप्रभा पृथिवीके ऊपरके खर भागमें रहते हैं तथा असुरकुमार और राक्षस उसी पृथिवीके पङ्क भागमें रहते हैं। इसके सिवाय व्यंतर देवोंका मध्य लोकमें भी कई जगह निवास है।

अर्थ—ज्योतिषीदेव-सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारोंके भेदसे पांच प्रकारके हैं।

नोट—ज्योतिषीदेवोंका निवास मध्यलोकके समधरातलसे ७९० योजनकी ऊंचाईसे लेकर ९०० योजनकी ऊंचाई तक आकाशमें है॥ १२॥

ज्योतिषीदेवोंका विशेष वर्णन—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके॥ १३॥

अर्थ—ऊपर कहे हुये ज्योतिषीदेव (नृलोके) मनुष्यलोकमें (मेरुप्रदक्षिणाः) मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देते हुए (नित्यगतयः) हमेशा गमन करते रहते हैं× ॥ १३॥

तत्कृतः कालविभागः॥ १४॥

अर्थ—(कालविभाग) घड़ी घण्टा दिन रात आदि व्यवहारकालका विभाग (तत्कृतः) उन्हीं गतिशील ज्योतिषी देवोंके द्वारा किया गया है॥ १४॥

बहिरवस्थिताः॥ १५॥

अर्थ—मनुष्यलोक-अढ़ाई द्वीपसे बाहरके ज्योतिषी देव स्थिर हैं॥ १५॥

वैमानिक देवोंका वर्णन—

वैमानिकाः॥ १६॥

अर्थ—अब यहांसे वैमानिक देवोंका वर्णन शुरू होता है।

× जम्बूद्वीपमें दो, लवणसमुद्रमें चार, धातकीखण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्धमें ७२ सूर्य तथा इतने ही चंद्रमा हैं।

प्रीतिंकर	,,			,,	,,	३१ ,,	३०	,,
अनुदिश				परम शुक्ल	१½ हाथ	३२ सागर	३१	,,
आदित्य	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अर्चि	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अर्चिमाली	,,			,,	,,	,,	,,	,,
वैरोचन	,,			,,	,,	,,	,,	,,
प्रभास	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अर्चिप्रभ	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अर्चिर्मध्य	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अर्चिरावर्त	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अर्चिर्विशिष्ट	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अनुत्तर								
विजय	,,			,,	१ हाथ	३३ सागर	,,	,,
वैजयन्त	,,			,,	,,	,,	,,	,,
जयन्त	,,			,,	,,	,,	,,	,,
अपराजित	,,			,,	,,	,,	,,	,,
सर्वार्थसिद्धि	,,			,,	,,	,,	जघन्य नहीं होती	,,

(१) वैमानिक देवोंके १२ भेद इन्द्रोंकी अपेक्षा हैं। १, २, ३, ४ तथा १३, १४, १५ और १६ वें स्वर्गमें प्रत्येक स्वर्गका एक एक इन्द्र तथा मध्यके ८ स्वर्गोंमें युगल युगलके इन्द्र हैं।

(२) पांचवें स्वर्गमें जो लौकांतिक देव रहते हैं उनकी आयु ८ सागरकी होती है।

देवगति व्यवस्था [वैमानिक देव]

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीरकी ऊंचाई	उत्कृष्ट आयु	ज० आयु	प्रवीचार
कल्प								
सौधर्म–ऐशान	ऊर्ध्वलोक	१२	२४	पीत	७ हाथ	साधिक २ सागर	साधिक १ पल्य	काय
सानत्कुमार–माहेन्द्र	,,			पीत-पद्म	६ ,,	,, ७ ,,	,, २ सागर	स्पर्श
ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	,,			पद्मलेश्या	५ हाथ	,, १० ,,	,, ७ ,,	रूप
लान्तव–कापिष्ट	,,			,,	,,	,, १४ ,,	,, १० ,,	,,
शुक्र–महाशुक्र	,,			पद्म–शुक्र	४ हाथ	,, १६ ,,	,, १४ ,,	शब्द
शतार–सहस्रार	,,			,,	,,	,, १८ ,,	,, १६ ,,	,,
आनत–प्राणत	,,			शुक्र	३½ हाथ	२० सागर	,, १८ ,,	मन
आरण–अच्युत	,,			,,	३ हाथ	२२ ,,	,, २० ,,	,,
ग्रैवेयक								
सुदर्शन	,,		अहमिंद्र	शुक्ल	२½ हाथ	२३ सागर	२२	अप्रवीचार
अमोघ	,,			,,	,,	२४ ,,	२३	,,
सुप्रबुद्ध	,,			,,	,,	२५ ,,	२४	,,
यशोधर	,,			,,	२ हाथ	२६ ,,	२५	,,
सुभद्र	,,			,,	,,	२७ ,,	२६	,,
विशाल	,,			,,	,,	२८ ,,	२७	,,
सुमन	,,			,,	१½ हाथ	२९ ,,	२८	,,
सौमन	,,			,,	,,	३० ,,	२९	,,

विमान—जिनमें रहनेवाले देव अपनेको विशेष पुण्यात्मा समझें उन्हें विमान कहते हैं और विमानोंमें जो पैदा हों उन्हें वैमानिक कहते हैं ॥ १६ ॥

वैमानिक देवोंके भेद—

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ—वैमानिक देवोंके दो भेद हैं–१ कल्पोपपन्न और २ कल्पातीत। जिनमें इन्द्र आदि दश भेदोंकी कल्पना होती है ऐसे सोलह स्वर्गोंको कल्प कहते हैं। उनमें जो पैदा हों उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। और जो सोलहवें स्वर्गसे आगे पैदा हों उन्हें कल्पातीत कहते हैं ॥ १७ ॥

कल्पोंका स्थितिक्रम—

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

अर्थ—सोलह स्वर्गोंके आठ युगल, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर हैं ॥ १८ ॥

वैमानिक देवोंके रहनेका स्थान—

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रसतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९॥

अर्थ—सौधर्म–ऐशान, सानत्कुमार–माहेन्द्र, ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर, लान्तव–कापिष्ट, शुक्र–महाशुक्र, सतार–सहस्रार इन छह युगलोंके

बारह स्वर्गोंमें, आनत—प्राणत इन दो स्वर्गोंमें, आरण—अच्युत इन दो स्वर्गोंमें, नव ग्रैवेयक¹ विमानोंमें, नव अनुदिश² विमानोंमें और विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तर विमानोंमें वैमानिक देव रहते हैं।

नोट—इस सूत्रमें यद्यपि अनुदिश विमानोंका पाठ नहीं है तथापि 'नवसु' इस पदसे उनका ग्रहण कर लेना चाहिये ॥१९॥

वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर अधिकता—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

अर्थ—वैमानिकदेव—आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रियविषय और अवधिज्ञानका विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर ऊपरके विमानोंमें अधिक अधिक हैं ॥ २० ॥

वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर हीनता—

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

अर्थ—ऊपर ऊपरके देव, गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा हीन हीन हैं।

नोट—सोलहवें स्वर्गसे आगेके देव अपने विमानको छोड़ कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते ॥२१॥

---

१ नवग्रैवेयक—सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, विशाल, सुमन, सौमन, और प्रीतिंकर।

२ नव अनुदिश—आदित्य, अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभास, अर्चिप्रभ, अर्चिमध्य, अर्चिरावर्त और अर्चिविशिष्ट।

वैमानिक देवोंमें शरीरकी ऊँचाईका क्रम इस प्रकार है—

स्वर्ग	हाथ	स्वर्ग	हाथ
१—२	७	१३—१४	३½
३—४	६	१५—१६	३
५—८	५	अधोग्रैवेयक	२½
९—१२	४	मध्यग्रैवेयक	२
		उपरिम ग्रैवेयक; अनुदिश	१½
		अनुत्तर विमान	१

वैमानिक देवोंमें लेश्याका वर्णन—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

अर्थ—(द्वित्रिशेषेषु) दो युगलोंमें, तीन युगलोंमें तथा शेषके समस्त विमानोंमें क्रमसे (पीतपद्मशुक्ललेश्याः) पीत पद्म और शुक्ललेश्या होती हैं।

विशेषार्थ—पहले और दूसरे स्वर्गमें पीतलेश्या, तीसरे और चौथे स्वर्गमें पीत और पद्मलश्या, पांचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्गमें पद्मलेश्या; नवमें, दशवें, ग्यारहवें, और वारहवें स्वर्गमें पद्म और शुक्ल-लेश्या तथा शेप समस्त विमानोंमें शुक्ललेश्या है। अनुदिश और अनुत्तरके १४ विमानोंमें परम शुक्लेश्या होती है ॥ २२ ॥

कल्पसंज्ञा कहांतक है?

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥

अर्थ—(ग्रैवेयकेभ्यः प्राक्) ग्रैवेयकोंसे पहले पहलेके १६ स्वर्ग (कल्पाः) कल्प कहलाते हैं। इनसे आगेके विमान कल्पातीत

हैं। नवग्रैवेयक वगैरहके देव एकसमान वैभवके धारी होते हैं और वे अहमिन्द्र कहलाते हैं ॥ २३ ॥

लौकान्तिक देव—

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है आलय (निवासस्थान) जिनका ऐसे लौकांतिक देव हैं।

नोट—ये देव ब्रह्मलोकके अन्तमें रहते हैं अथवा एक भवावतारी होनेसे लोक (संसार)का अंत (नाश) करनेवाले होते हैं, इसलिये लौकांतिक कहलाते हैं। ये द्वादशाङ्गके पाठी होते हैं, ब्रह्मचारी रहते हैं और तीर्थंकरोंके सिर्फ तपः कल्याणकमें आते हैं। इन्हें 'देवर्षि' भी कहते हैं ॥ २४ ॥

लौकान्तिक देवोंके नाम—

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ अरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित ७ अव्याबाध और ८ अरिष्ट ये आठ लौकांतिकदेव हैं। ब्रह्मलोककी ऐशान आदि आठ दिशाओंमें रहते हैं ॥ २५ ॥

अनुदिश तथा अनुत्तरवासी देवोंमें अवतारका नियम—

विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

अर्थ—विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा अनुदिश विमानोंके अहमिन्द्र द्विचरम होते हैं अर्थात् मनुष्यके दो जन्म लेकर निय-

मसे मोक्ष चले जाते हैं। किन्तु सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र एक भवावतारी ही होते हैं॥ २६॥

तिर्यञ्च कौन हैं?

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

अर्थ—उपपाद जन्मवाले—देव नारकी तथा मनुष्योंसे अतिरिक्त जीव (तिर्यग्योनयः) तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च समस्त संसारमें व्याप्त हैं परन्तु त्रस जीव त्रस नालीमें ही रहते हैं।

भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयुका वर्णन—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—भवनवासियोंमें असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेषके छह कुमारोंकी आयु क्रमसे १ सागर ३ पल्य, २$\frac{१}{२}$ पल्य और १$\frac{१}{२}$ पल्य है॥ २८॥

वैमानिक देवोंकी उत्कृष्ट आयु—[१]

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

अर्थ—सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंकी आयु दो सागरसे कुछ अधिक है।[२]

नोट—यहां 'सागरोपमे' इस द्विवचनान्त प्रयोगसे ही दो सागर अर्थ किया जाता है॥ २९॥

१—यद्यपि भवनवासियोंके बाद व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी आयु बतलानेका क्रम है तथापि लाघवके खयालसे यहां क्रम भङ्ग कर वैमानिक देवोंकी आयु बतला रहे हैं।

२—यह अधिकता घातायुष्क जीवोंकी अपेक्षा है।

सानत्कुमारमाहेंद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अर्थ—सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें देवोंकी आयु सात सागरसे कुछ अधिक है।

नोट—इस सूत्रमें अधिक शब्दकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे हुई है ॥ ३० ॥

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

अर्थ—आगेके युगलोंसे ७ सागरसे क्रमपूर्वक ३।७।९।११। १३ और १५ सागर अधिक आयु है। अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें १० सागरसे कुछ अधिक, लान्तव और कापिष्ट स्वर्गमें १४ सागरसे कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र स्वर्गमें १६ सागरसे कुछ अधिक, सतार और सहस्रार स्वर्गमें १८ सागरसे कुछ अधिक,* आनत और प्राणत स्वर्गमें २० सागर तथा आरण और अच्युत स्वर्गमें २२ सागर उत्कृष्ट स्थिति है ॥ ३१ ॥

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥

अर्थ—(आरणाच्युतात्) आरण और अच्युत स्वर्गसे (ऊर्ध्वम्) ऊपर (नवसु ग्रैवेयकेषु) नव ग्रैवेयकोंमें (विजयादिषु) विजय आदि

* सूत्रमें 'तु' शब्द होनेके कारण अधिक शब्दका सम्बन्ध बारहवें स्वर्ग तक ही होता है, क्योंकि घातायुष्क जीवोंकी उत्पत्ति यहीं तक होती है।

चार विमान तथा नव अनुदिशोंमें× (च) और (सर्वार्थसिद्धौ) सर्वार्थसिद्धि विमानमें (एकैकेन) एक एक सागर बढ़ती हुई आयु है अर्थात् पहले ग्रैवेयकमें २३ सागर; दूसरेमें २४ सागर आदि, अनुदिशोंमें ३२ सागर और अनुत्तरोंमें ३३ सागर उत्कृष्ट स्थिति है।

नोट—सूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' इस पदको विजयादिसे पृथक् कहनेसे सूचित होता है कि सर्वार्थसिद्धिमें सिर्फ उत्कृष्ट स्थिति ही होती है ॥ ३२ ॥

स्वर्गोंमें जघन्य आयुका वर्णन—

अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है* ॥ ३३ ॥

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनंतरा ॥ ३४ ॥

अर्थ—(पूर्वापूर्वा) पहले पहले युगलकी उत्कृष्ट आयु (परतः परतः) आगे आगेके युगलोंमें (अनन्तरा) जघन्य आयु है। जैसे सौधर्म और ऐशान स्वर्गकी जो उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागरकी है वह सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य आयु है। इसी क्रमसे आगे जानना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती ॥ ३४ ॥

नारकियोंकी जघन्य आयु—

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

× आदि शब्दके 'प्रकारार्थक' होनेसे अनुदिशका भी ग्रहण होता है।

* असंख्यात वर्षोंका एक पल्य होता है और दश कोड़ाकोड़ी पल्योंका एक सागर होता है।

अर्थ—और इसी प्रकार दूसरे आदि नरकोंमें भी नारकियोंकी जघन्य आयु है। अर्थात् पहले नरककी उत्कृष्ट आयु दूसरे नरककी जघन्य आयु है। इसी तरह समस्त नरकोंमें जानना चाहिये ॥३५॥

प्रथम नरककी जघन्य आयु—

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—पहले नरकमें नारकियोंकी जघन्य आयु दशहजार वर्षोंकी है ॥ ३६ ॥

भवनवासियोंकी जघन्य आयु—

भवनेषु च ॥ ३७ ॥

अर्थ—भवनवासियोंमें भी जघन्य आयु दशहजार वर्षोंकी है ॥ ३८ ॥

व्यन्तरोंकी जघन्य आयु—

व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥

अर्थ—व्यन्तर देवोंकी भी जघन्य स्थिति दश हजार वर्षकी है ॥ ३८ ॥

व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु—

परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है ॥ ३९ ॥

ज्योतिषी देवोंकी उत्कृष्ट आयु—

ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

अर्थ—ज्योतिषी देवोंकी भी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्यकी है ॥ ४० ॥

तीन लोक-रचना।

सिद्धशिला
(मोक्ष)
एकराजू
ग्रैवेयकादि
स्वर्ग
ग्रै. अ.
आ. अ.
आ.
स. स.
शु. म.
लां. का.
ब्र. ब्र.
पांचराजू.
सा. मा.
सौ. ई.
मध्यलोक
एकराजू.
रत्नप्रभा
शर्करा प्र.
वालुका प्रभा.
पंक प्रभा.
धूम. प्रभा.
तम प्रभा.
महातम प्रभा.
तमस्तम
सात नरक
सात राजू।
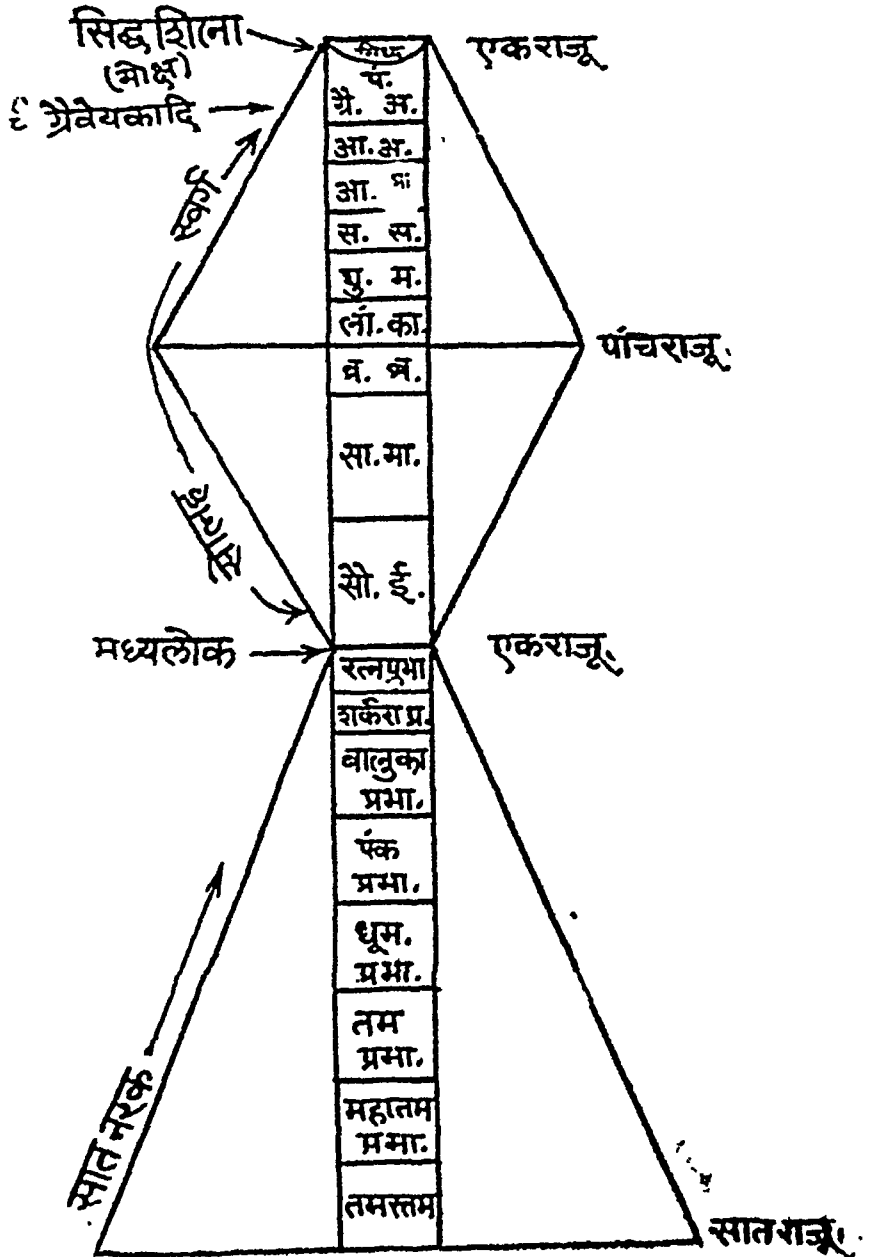
ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु—

तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु उस एक पल्यके आठवें भाग है ॥ ४१ ॥

लौकांतिक देवोंकी आयु—

लोकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

अर्थ—(सर्वेषाम्) समस्त (लौकांतिकानाम्) लौकांतिक देवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु (अष्टौ सागरोपमाणि) आठ सागर-प्रमाण है ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली ।

(१) भवनत्रिकमें लेश्याएं कौन २ होती हैं ?
(२) सोहवें स्वर्गके आगेके देव प्रवीचारके विना सुखी किस तरह रहते हैं ?
(३) सामानिक, आत्मरक्ष और किल्विष जातिके देवोंके लक्षण वताओ ।
(४) स्वर्गलोकका नक्शा खींचकर यथास्थान सब व्यवस्था दर्शाओ
(५) सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य स्थिति कितनी है ?
(६) व्यन्तर देव कहां रहते हैं ?
(७) अढ़ाई द्वीपमें कितने सूर्य और कितने चन्द्रमा हैं ?
(८) दिन आदिका विभाग किसमें होता है ?
(९) स्वर्गमें दिन रात होते हैं या नहीं ?
(१०) लौकान्तिक देवोंकी कितनी आयु है ?

पंचम अध्याय।

अजीवतत्त्वका वर्णन—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

अर्थ—(धर्माधर्माकाशपुद्गलाः) धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार (अजीवकायाः) अजीव तथा बहुप्रदेशी हैं।

नोट—इस सूत्रमें बहुप्रदेशी नहीं होनेसे काल द्रव्यका ग्रहण नहीं किया है* ॥ १ ॥

द्रव्योंकी गणना—

द्रव्याणि ॥ २ ॥

अर्थ—उक्त चार पदार्थ द्रव्य हैं। द्रव्यका लक्षण आगे मूल-सूत्रोंमें कहा जावेगा ॥ २ ॥

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ—जीव भी द्रव्य हैं।

नोट—यहां 'जीवाः' इस बहुवचनसे जीव द्रव्यके अनेक-भेद सूचित होते हैं। इनके सिवाय ३९ वें सूत्रमें कालद्रव्यका भी कथन होगा। इसलिये इन सबको मिलाने पर १ जीवद्रव्य २ पुद्गल-द्रव्य, ३ धर्म द्रव्य, ४ अधर्म द्रव्य, ५ आकाश द्रव्य और ६ कालद्रव्य ये छह द्रव्य होते हैं ॥ ३ ॥

---

* जो द्रव्य सत्तारूप होकर बहुप्रदेशी हों उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। वे पांच हैं-१ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म और ५ आकाश।

द्रव्योंकी विशेषता—

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए सभी द्रव्य नित्य, अवस्थित और अरूपी हैं। कभी नष्ट नहीं होते इसलिये नित्य हैं, अपनी ६ संख्याका उल्लंघन नहीं करते, इसलिये अवस्थित हैं और रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्शसे रहित हैं इसलिये अरूपी हैं ॥ ४ ॥

पुद्गलद्रव्य अरूपी नहीं है—

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

अर्थ—पुद्गल द्रव्य रूपी अर्थात् मूर्तिक हैं।

नोट—यद्यपि सूत्रमें सिर्फ पुद्गलको रूपी बतलाया है पर साहचर्यसे रस गन्ध तथा स्पर्शका भी ग्रहण होजाता है ॥ ५ ॥

द्रव्योंके स्वभेदकी गणना—

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

अर्थ—आकाश पर्यन्त एक एक द्रव्य हैं अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य एक एक हैं। जीवद्रव्य अनन्त हैं, पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं और कालद्रव्य असंख्यात (अणुरूप) हैं ॥ ६ ॥

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

अर्थ—धर्म, अधर्म, और आकाश ये तीनों द्रव्य क्रियारहित हैं। क्रिया—एक स्थानसे दूसरे स्थानमें प्राप्त होनेको क्रिया कहते हैं।

नोट—धर्म और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं तथा आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनों जगह व्याप्त है इसलिये अन्यक्षेत्रका अभाव होनेसे इनमें क्रिया नहीं होती ॥ ७ ॥

द्रव्योंके प्रदेशोंका वर्णन—

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—(धर्माधर्मैकजीवानाम्) धर्म अधर्म और एक जीव-द्रव्यके (असंख्येयाः) असंख्यात (प्रदेशाः) प्रदेश होते हैं।

प्रदेश—जितने क्षेत्रको एक पुद्गल परमाणु रोकता है उतने क्षेत्रको एक प्रदेश कहते हैं।

नोट—सब जीव द्रव्योंके अनन्तानन्त प्रदेश होते हैं, इसलिये सूत्रमें एक जीवका ग्रहण किया है ॥ ८ ॥

आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥

अर्थ—आकाशके अनन्त प्रदेश हैं। परन्तु लोकाकाशके असंख्यात ही हैं ॥ ९ ॥

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥

अर्थ—(पुद्गलानाम्) पुद्गलोंके (संख्येयाऽसंख्येयाः च) संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं।

शङ्का—जब लोकाकाशमें असंख्यात ही प्रदेश हैं तब उसमें अनन्त प्रदेशवाले पुद्गल द्रव्य तथा शेष द्रव्य किसतरह रह सकेंगे ?

समाधान—पुद्गलद्रव्यमें दो तरहका परिणमन होता है—एक सूक्ष्म और दूसरा स्थूल। जब उसमें सूक्ष्म परिणमन होता है तब लोकाकाशके एक प्रदेशमें भी अनन्त प्रदेशवाला पुद्गल स्कन्ध स्थान पा लेता है। इसके सिवाय समस्त द्रव्योंमें एक दूसरेको अवगाहन देनेकी सामर्थ्य है, जिससे अल्प क्षेत्रमें ही समस्त द्रव्योंके निवासमें कोई बाधा नहीं होती ॥ १० ॥

नाणोः ॥ ११ ॥

अर्थ—पुद्गलके परमाणुके द्वितीयादिक प्रदेश नहीं हैं अर्थात् वह एकप्रदेशी ही है ॥ ११ ॥

समस्त द्रव्योंके रहनेका स्थान—

लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए समस्त द्रव्योंका अवगाह (स्थान) लोकाकाशमें है।

लोकाकाश—आकाशके जितने हिस्सेमें जीव आदि छहों द्रव्य पाए जावें उतने हिस्सेको लोकाकाश कहते हैं। बाकी हिस्सा अलोकाकाश कहलाता है ॥ १२ ॥

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

अर्थ—धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह तिलमें तेलकी तरह समस्त लोकाकाशमें है ॥ १३ ॥

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥

अर्थ—(पुद्गलानाम्) पुद्गल द्रव्यका अवगाह (एकप्रदेशादिषु) लोकाकाशके एक प्रदेशको लेकर संख्यात असंख्यात प्रदेशोंमें (भाज्यः) विभाग करने योग्य है ॥ १४ ॥

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

अर्थ—(जीवानाम्) जीवोंका अवगाह (असंख्येयभागादिषु) लोकाकाशके असंख्यातवें भागसे लेकर सम्पूर्ण लोकक्षेत्रमें है ॥ १५ ॥

प्रश्न—जब कि एक जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है तब वह लोकके असंख्यातवें भागमें कैसे रह सक्ता है ? समाधान—

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—(प्रदीपवत्) दीपकके प्रकाशकी तरह (प्रदेशसंहारविसर्पाभ्याम्) प्रदेशोंके संकोच और विस्तारके द्वारा जीव लोकाकाशके असंख्यातवें आदि भागोंमें रहता है अर्थात् जिसतरह एक बड़े मकानमें दीपकके रख देनेसे उसका प्रकाश समस्त मकानमें फैल जाता है और उसी दीपकको एक छोटेसे वर्तनके भीतर रख देनेसे उसका प्रकाश उसीमें संकुचित होकर रह जाता है उसी तरह जीव भी जितना बड़ा या छोटा शरीर पाता है उसमें उतना ही विस्तृत या संकुचित होकर रह जाता है। परन्तु केवली समुद्घात[1] अवस्थामें सम्पूर्ण लोकाकाशमें व्याप्त हो जाता है और सिद्ध अवस्थामें अन्तिम शरीरसे कुछ कम रहता है ॥ १६ ॥

धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकरण या लक्षण—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

अर्थ—स्वयमेव गमन तथा स्थितिको प्राप्त हुए जीव और पुद्गलोंको गति तथा स्थितिमें सहायता देना क्रमसे धर्म अधर्म द्रव्यका उपकार है।

भावार्थ—जो जीव और पुद्गलोंको चलनेमें सहायक हो उसे

---

१ मूलशरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं।

र्धर्म द्रव्य तथा जो ठहरनेमें सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं ॥१७॥

आकाशका उपकार या लक्षण—

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥

अर्थ—समस्त द्रव्योंको अवकाश देना आकाशका उपकार है।

भावार्थ—जो सब द्रव्योंको ठहरनेके लिये स्थान देवे उसे आकाश कहते हैं ॥ १८ ॥

पुद्गल द्रव्यका उपकार—

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—औदारिक आदि शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास ये पुद्गलद्रव्यके उपकार हैं अर्थात् शरीरादिकी रचना पुद्गलसे ही होती है ॥ १९ ॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

अर्थ—इन्द्रियजन्य सुख दुःख जीवन और मरण ये भी पुद्गल-द्रव्यके उपकार हैं।

नोट १—इस सूत्रमें जो उपग्रह शब्दका ग्रहण किया है उससे सूचित होता है कि पुद्गल परस्परमें एक दूसरेका उपकार करते हैं जैसे-राख कांसेका, पानी लोहेका, सावुन कपड़ेका आदि।

नोट २—यहां उपकार शब्दका अर्थ निमित्त मात्र ही समझना चाहिए अन्यथा दुःख मरण आदि उपकार नहीं कहलावेंगे ॥२०॥

जीवोंका उपकार—

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

अर्थ—जीवोंका परस्पर उपकार है अर्थात जीव कारणवश एक दूसरेका उपकार करते हैं जैसे—स्वामी सेवकका, सेवक स्वामीका, गुरु शिष्यका और शिष्य गुरुका ॥ २१ ॥

कालका उपकार—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥

अर्थ—वर्तना परिणाम क्रिया परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्यके उपकार हैं।

वर्तना—जो द्रव्योंको वर्तावे उसे वर्तना कहते हैं।*

परिणाम—एक धर्मके त्यागरूप और दूसरे धर्मके ग्रहणरूप जो पर्याय है उसे परिणाम कहते हैं। जैसे जीवमें ज्ञानादि और पुद्गलमें वर्णादि।

क्रिया—हलन चलनरूप परिणतिको क्रिया कहते हैं।

परत्वापरत्व—छोटे बड़े व्यवहारको परत्वापरत्व कहते हैं जैसे—२५ वर्षके मनुष्यको बड़ा और २० वर्षके मनुष्यको उसी अपेक्षा छोटा कहते हैं।

ये सब कालद्रव्यकी सहायतासे होते हैं इसलिये इन्हें देखकर अमूर्तिक निश्चय कालद्रव्यका अनुमान करलेना चाहिये ॥ २२ ॥

पुद्गल द्रव्यका लक्षण—

स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

अर्थ—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवाले पुद्गल हैं।

---

* यद्यपि सर्व द्रव्य अपने आप वर्तते हैं तथापि उसके वर्तनेमें जो बाह्य सहकारी कारण हो उसे वर्तना कहते हैं।

षट्द्रव्य
पुद्गल
धर्म
अधर्म
निश्चय
काल
आकाश

द्रव्यविभाग।

द्रव्य
जीव
अजीव
मुक्त
संसारी
पुद्गल
धर्म
अधर्म
आकाश
काल
१ अणु, २ स्कन्ध
लोक-अलोक,
निश्चय-व्यवहार
त्रस
स्थावर
द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय
पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति
संज्ञी
असंज्ञी
नरक,
तिर्यञ्च,
मनुष्य,
देव
१ रत्नप्रभागत
२ शर्कराप्रभागत
३ वालुकाप्रभागत
४ पंकप्रभागत
५ धूमप्रभागत
६ तमःप्रभागत
७ महातमःप्रभागत
जलचर
स्थलचर
नभश्चर
आर्य
म्लेच्छ
ऋद्धिप्राप्त
अनृद्धिप्राप्त
क्षेत्रम्लेच्छ, कर्मम्लेच्छ
१ बुद्धि
२ विक्रिया
३ तप
४ बल
५ औषधि
६ रस
७ अक्षीण
१ क्षेत्रार्य
२ जात्यार्य
३ कर्मार्य
४ चारित्रार्य
५ दर्शनार्य

विशेष—ये चारों गुण हरएक पुद्गलमें एकसाथ रहते हैं। इनके उत्तर भेद इस प्रकार हैं:—

स्पर्शके आठ भेद—१ कोमल, २ कठोर, ३ हलका, ४ भारी, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध और ८ रूक्ष।

रसके पांच भेद—१ खट्टा, २ मीठा ३ कडुआ, ४ कषायला और ५ चरपरा।

गन्धके दो भेद—१ सुगन्ध और २ दुर्गन्ध।

वर्णके पांच भेद—काला, नीला, पीला, लाल और सफेद। ये वीस पुद्गलके गुण कहलाते हैं। क्योंकि हमेशा उसीमें रहते हैं ॥२३॥

पुद्गलकी पर्याय—

शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया-तपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—उक्त लक्षणवाले पुद्गल—शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार), भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत सहित हैं। अर्थात् ये पुद्गलकी पर्याय हैं ॥ २४ ॥

पुद्गलके भेद—

अणवः स्कंधाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य अणु और स्कन्ध इस प्रकार दो भेदरूप है।

अणु—जिसका दूसरा विभाग न होसके ऐसे पुद्गलको अणु कहते हैं।

स्कन्ध—दो तीन संख्यात असंख्यात तथा अनन्त परमाणुओंके पिंडको स्कन्ध कहते हैं ॥ २५ ॥

स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण—

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यंते ॥ २६ ॥

अर्थ—पुद्गलोंके स्कन्ध भेद—बिछुड़ने, संघात—मिलने और भेद संघात—दोनोंसे उत्पन्न होते हैं। जैसे १०० परमाणुवाला स्कन्ध है उसमें १० परमाणु बिछुड़ जानेसे ९० परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है और उसीमें १० परमाणु मिल जानेसे ११० परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है और उसीमें एकसाथ दश परमाणुओंके बिछुड़ने और १५ परमाणुओंके मिल जानेसे १०५ परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है।

नोट—सूत्रमें द्विवचनके स्थानमें जो बहुवचनरूप प्रयोग किया है उसीसे यह तीसरा अर्थ व्यक्त हुआ है॥ २७ ॥

अणुकी उत्पत्तिका कारण—

भेदादणुः ॥ २७ ॥

अर्थ—अणुकी उत्पत्ति भेदसे ही होती है ॥ २६ ॥

चाक्षुष (देखनेयोग्य-स्थूल) स्कन्धकी उत्पत्ति—

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अर्थ—(चाक्षुषः) चक्षुइन्द्रियसे देखने योग्य स्कन्ध (भेद-संघाताभ्याम्) भेद और संघात दोनोंसे ही उत्पन्न होते हैं। अकेले भेदसे उत्पन्न नहीं होसक्ता ॥ २८ ॥

द्रव्यका लक्षण—

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् (अस्तित्व) है ॥ २९ ॥

सत्का लक्षण—

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित हो वह सत् है।

उत्पाद—द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं। जैसे मिट्टीकी पिण्डपर्यायसे घटका।

व्यय—पूर्वपर्यायके विनाशको व्यय कहते हैं जैसे घटपर्याय उत्पन्न होने पर पिण्डपर्यायका।

ध्रौव्य—दोनों पर्यायोंमें मौजूद रहनेको ध्रौव्य कहते हैं। जैसे पिण्ड तथा घट पर्यायमें मिट्टीका ॥ ३० ॥

नित्यका लक्षण—

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जो द्रव्य तद्भावरूपसे अव्यय है वही नित्य है।

भावार्थ—प्रत्यभिज्ञानके हेतुको तद्भाव कहते हैं। जिस द्रव्यको पहले समयमें देखनेके बाद दूसरे आदि समयोंमें देखनेपर 'यह वही है जिसे पहले देखा था' ऐसा जोड़रूप ज्ञान हो वह द्रव्य नित्य है। परन्तु यह नित्यता पदार्थमें सामान्य स्वरूपकी अपेक्षा होती है, विशेष अर्थात् पर्यायकी अपेक्षा सभी द्रव्य अनित्य हैं। इसलिये संसारके सब पदार्थ नित्यानित्यरूप हैं ॥ ३१ ॥ *

---

* "नित्यं तदेवेदमितिप्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥"
(समन्तभद्र)

प्रश्न—एक ही द्रव्यमें नित्यता और अनित्यता ये दो विरुद्ध धर्म किसप्रकार रहते हैं ? समाधान—

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—विवक्षित और अविवक्षित रूपसे एक ही द्रव्यमें नाना धर्म रहते हैं। वक्ता जिस धर्मको कहनेकी इच्छा करता है उसे अर्पित-विवक्षित कहते हैं। और वक्ता उस समय जिस धर्मको नहीं कहना चाहता है वह अनर्पित-अविवक्षित है। जैसे वक्ता यदि द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका प्रतिपादन करेगा तो नित्यता विवक्षित कहलावेगी और यदि पर्यायार्थिक नयसे प्रतिपादन करेगा तो अनित्यता विवक्षित है। जिस समय किसी पदार्थको द्रव्यकी अपेक्षा नित्य कहा जारहा है उसी समय वह पदार्थ पर्यायकी अपेक्षा अनित्य भी है। पिता, पुत्र, मामा, भानजा आदिकी तरह एक ही पदार्थमें अनेक धर्म रहनेपर भी विरोध नहीं आता ॥ ३२ ॥ *

परमाणुओंके वन्ध होनेमें कारण—

स्निग्धरूक्षत्वाद्वंधः ॥ ३३ ॥

अर्थ—चिकनाई और रूखापनके निमित्तसे दो तीन आदि परमाणुओंका वन्ध होता है।

वन्ध—अनेक पदार्थोंमें एकपनेका ज्ञान करानेवाले सम्बन्ध-विशेषको वन्ध कहते हैं ॥ ३३ ॥

---

* जैनागममें यही सूत्र 'स्याद्वाद सिद्धान्त' का मूलभूत है। पाठक दही मथनेवाली गोपी आदिका उदाहरण देकर विद्यार्थियोंको विवक्षा, अविवक्षा, गौणता, मुख्यता आदिका स्वरूप समझानेकी कोशिश करें।

न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—जघन्य गुण सहित परमाणुओंका बन्ध नहीं होता।

गुण—स्निग्धता और रूक्षताके अविभागीप्रतिच्छेदों (जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके ऐसे अंशों) को गुण कहते हैं।

जघन्य गुणसहित परमाणु—जिस परमाणुमें स्निग्धता और रूक्षताका एक अविभागी अंश हो उसे जघन्य गुण सहित परमाणु कहते हैं ॥ ३४ ॥

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—गुणोंकी समानता होने पर समान जातिवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता। जैसे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुका दूसरे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता।

नोट—सूत्रमें "सदृशानाम्" इस पदके ग्रहणसे प्रकट होता है कि गुणोंकी विषमतामें समानजातिवाले अथवा भिन्न जातिवाले पुद्गलोंका बन्ध हो जाता है ॥ ३५ ॥

बन्ध किनका होता है?—

द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

अर्थ—किन्तु दो अधिक गुणवालोंके साथ ही बन्ध होता है। अर्थात् बन्ध तभी होगा जब एक परमाणुसे दूसरे परमाणुमें २ अधिक गुण होवें। जैसे दो गुणवाले परमाणुका चार गुणवाले परमाणुके साथ बन्ध होगा, इससे अधिक व कम गुणवालेके साथ नहीं होगा। यह बन्ध स्निग्ध स्निग्धका, रूक्ष रूक्षका और स्निग्ध रूक्षका भी होता है।३६।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

अर्थ—(च) और (बन्धे) बन्धरूप अवस्थामें (अधिको) अधिक गुणवाले परमाणुओंको अपने रूप (पारिणामिकौ) परिणमाने-वाले होते हैं। जैसे गीला गुड़ अपने साथ बन्धको प्राप्त हुए रजको गुड़रूप परिणमा लेता है ॥ ३७ ॥

द्रव्यका लक्षण—

गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥*

अर्थ—जिसमें गुण और पर्याय पाई जावें उसे द्रव्य कहते हैं।

गुण—द्रव्यकी अनेक पर्याय पलटते रहने पर भी जो द्रव्यसे कभी पृथक् न हो। निरन्तर द्रव्यके साथ रहे उसे गुण कहते हैं। जैसे जीवके ज्ञान आदि; पुद्गलके रूप रसादि।

पर्याय—क्रमसे होनेवाली वस्तुकी विशेषताको पर्याय कहते हैं। जैसे जीवकी नर नारकादि ॥ ३८ ॥

काल भी द्रव्य है—

कालश्च[1] ॥ ३९ ॥

अर्थ—काल भी द्रव्य है, क्योंकि यह भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य तथा गुण पर्यायोंसे सहित है।

नोट—यह काल द्रव्य रत्नोंकी राशिकी तरह एक दूसरेसे पृथक् रहते हुए लोकाकाशके समस्त प्रदेशों पर स्थित है। यह एक-प्रदेशी और अमूर्तिक है ॥ ३९ ॥

---

* यह द्रव्यका लक्षण पूर्वलक्षणसे भिन्न नहीं है। सिर्फ शब्द भेद है अर्थ भेद नहीं। क्योंकि पर्यायसे उत्पाद और व्ययका तथा गुणसे ध्रौव्य अर्थकी प्रतीति होजाती है।

१ 'च' का अन्वय 'द्रव्याणि' सूत्रके साथ है।

कालद्रव्यकी विशेषता—

सोऽनंतसमयः ॥ ४० ॥

अर्थ—वह काल द्रव्य अनन्त समयवाला है। यद्यपि वर्तमान-काल एकसमय मात्र ही है तथापि भूत भविष्यत्की अपेक्षा अनन्त समयवाला है।

समय—कालद्रव्यके सबसे छोटे हिस्सेको समय कहते हैं। मन्दगतिसे चलनेवाला पुद्गल परमाणु आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जितने कालमें पहुँचता है उतना काल एक समय है। इन समयोंके समूहसे ही आवलि घंटा आदि व्यवहारकाल होता है। व्यवहारकाल निश्चय कालद्रव्यकी पर्याय है।

निश्चयकालद्रव्य—लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिकी तरह जो स्थित है उसे निश्चय कालद्रव्य कहते हैं। वर्तना उसका कार्य है॥ ४० ॥

गुणका लक्षण—

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो द्रव्यके आश्रय हों और स्वयं दूसरे गुणोंसे रहित हों वे गुण कहलाते हैं, जैसे—जीवके ज्ञान आदि। ये जीव द्रव्यके आश्रय रहते हैं तथा इनमें कोई दूसरा गुण नहीं रहता ॥ ४१ ॥

पर्यायका लक्षण—

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अर्थ—जीवादि द्रव्य जिस रूप हैं उनके उसीरूप रहनेको परिणाम या पर्याय कहते हैं। जैसे जीवकी नर-नारकादि पर्याय ॥४२॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली।

(१) अस्तिकाय किसे कहते हैं व कितने हैं?

(२) जीव असंख्यात-प्रदेशी होनेपर भी अल्प शरीरमें किस प्रकार रहता है?

(३) कालद्रव्यके क्या उपकार हैं?

(४) अलोकाकाशके आकाशमें कालद्रव्यके बिना उत्पाद आदि किस तरह होते हैं?

(५) पुद्गल द्रव्यके कितने प्रदेश हैं?

(६) "अर्पितानर्पितसिद्धेः" इस सूत्रका क्या आशय है?

(७) 'जघन्य गुण' शब्दका क्या अर्थ है?

(८) बन्ध किन किनका होता है?

(९) यदि धर्म द्रव्य न मानकर उसका कार्य आकाश द्रव्यसे लिया जावे तो क्या हानि होगी?

(१०) काल द्रव्य अजीव क्यों है?

षष्ठ अध्याय ।

आस्रवतत्वका वर्णन ।

योगके भेद व स्वरूप—

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥ १ ॥

अर्थ—काय वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं। अर्थात् काय वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंमें जो परिष्पन्द (हलन चलन) होता है उसे योग कहते हैं। योगके तीन भेद हैं—१ मनोयोग, २ वचनयोग और ३ काययोग।

मनोयोग—मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन चलन होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

वचनयोग—वचनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन चलन होता है उसे वचनयोग कहते हैं।

काययोग—कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन चलन होता है उसे काययोग कहते हैं।

इन तीनों योगोंकी उत्पत्तिमें वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम कारण है ॥ १ ॥

आस्रवका स्वरूप—

स आस्रवः ॥ २ ॥

अर्थ—वह तीन प्रकारका योग ही आस्रव है। जिस प्रकार कुएके भीतर पानी आनेमें झिरें कारण होती हैं उसी प्रकार आत्मामें कर्म आनेमें योग कारण हैं। कर्मोंके आनेके द्वारको आस्रव कहते हैं।

नोट—यद्यपि योग आस्रवके होनेमें कारण है तथापि सूत्रमें कारणमें कार्यका उपचार कर उसे आस्रव रूप कह दिया है। जैसे—प्राणोंकी स्थितिमें कारण होनेसे अन्न हीको प्राण कह देते हैं॥२॥

योगके निमित्तसे आस्रवमें भेद—

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—शुभ योग पुण्यकर्मके आस्रवमें और अशुभ योग पाप-कर्मके आस्रवमें कारण है।

शुभ योग—शुभ परिणामोंसे रचे हुए योगको शुभ योग कहते हैं। जैसे—अरहन्तकी भक्ति करना, जीवोंकी रक्षा करना आदि।

अशुभ योग—अशुभ परिणामोंसे रचे हुए योगको अशुभ योग कहते हैं—जैसे जीवोंकी हिंसा करना, झूठ बोलना आदि।

पुण्य—जो आत्माको पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं।

पाप—जो आत्माको अच्छे कार्योंसे बचावे—दूर करे उसे पाप कहते हैं॥ ३ ॥

स्वामीकी अपेक्षा आस्रवके भेद—

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥४॥

अर्थ—वह योग कषाय सहित जीवोंके साम्परायिक आस्रव और कषाय रहित जीवोंके ईर्यापथ आस्रवका कारण है।

कषाय—जो आत्माको कषै अर्थात् चारों गतियोंमें भटका कर दुःख देवे उसे कषाय कहते हैं। जैसे—क्रोध, मान, माया, लोभ।

साम्परायिक आस्रव—जिस आस्रवका संसार ही प्रयोजन है उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं।

ईर्यापथ—स्थिति और अनुभाग रहित कर्मोंके आस्रवको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

नोट—ईर्यापथ आस्रव ११ वेंसे १४ वें गुणस्थान तकके जीवोंके होता है और उसके पहले गुणस्थानोंमें साम्परायिक आस्रव होता है ॥ ४ ॥

साम्परायिक आस्रवके भेद—

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंचचतुःपंचपंचविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

अर्थ—स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियां, क्रोधादि चार कषाय, हिंसादि पांच अव्रत और सम्यक्त्व आदि पच्चीस क्रियाएं, इस तरह साम्परायिक आस्रवके ३९ भेद हैं अर्थात् इन सब ३९ भेदोंके द्वारा साम्परायिक कर्मका आस्रव होता है।

पच्चीस क्रियाएं—

(१) सम्यक्त्वको बढ़ानेवाली क्रियाको **सम्यक्त्व क्रिया** कहते हैं, जैसे देवपूजन आदि।

(२) मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली क्रियाको **मिथ्यात्व क्रिया** कहते हैं, जैसे कुदेव पूजन आदि।

(३) शरीरादिसे गमनागमन रूप प्रवृत्ति करना सो **प्रयोग क्रिया** है।

(४) संयमीका असंयमके सन्मुख होना सो **समादान क्रिया** हैं।

(५) गमनके लिये जो क्रिया होती है उसे **ईर्यापथ क्रिया** कहते हैं।

(६) क्रोधके वशसे जो क्रिया हो वह प्रादोषिकी क्रिया है।

(७) दुष्टतापूर्वक उद्यम करना सो कायिकी क्रिया है।

(८) हिंसाके उपकरण, तलवार आदिका ग्रहण करना सो अधिकरण क्रिया है।

(९) जीवोंको दुःख उत्पन्न करनेवाली क्रियाको पारितापिकी क्रिया कहते हैं।

(१०) आयु, इन्द्रिय आदि प्राणोंका वियोग करना सो प्राणातिपाति क्रिया है।

(११) रागके वशीभूत होकर मनोहर रूप देखना सो दर्शन क्रिया है।

(१२) रागके वशीभूत होकर वस्तुका स्पर्श करना स्पर्शन क्रिया है।

(१३) विषयोंके नये नये कारण मिलाना प्रात्ययिकी क्रिया है।

(१४) स्त्री पुरुष अथवा पशुओंके बैठने तथा सोने आदिके स्थानमें मल मूत्रादि क्षेपण करना समन्तानुपात क्रिया है।

(१५) विना देखी विना शोधी हुई भूमिपर उठना बैठना अनाभोग क्रिया है।

(१६) दूसरे द्वारा करने योग्य क्रियाको स्वयं करना स्वहस्त क्रिया है।

(१७) पापको उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तिको भला समझना निसर्ग क्रिया है।

(१८) परके किये हुए पापोंको प्रकाशित करना **विदारण** **क्रिया** है।

(१९) चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे शास्त्रोक्त आवश्यकादि क्रियाओंके करनेमें असमर्थ होकर अन्यथा निरूपण करना सो **आज्ञा-व्यापादिकी क्रिया** है।

(२०) प्रमाद अथवा अज्ञानके वशीभूत होकर आगमोक्त क्रियाओंमें अनादर करना **अनाकांक्षा क्रिया** है।

(२१) छेदन भेदन आदि क्रियाओंमें स्वयं प्रवृत्त होना तथा अन्यको प्रवृत्त देखकर हर्षित होना **प्रारम्भ क्रिया** है।

(२२) परिग्रहकी रक्षामें प्रवृत्त होना **पारिग्रहिकी क्रिया** है।

(२३) ज्ञान दर्शन आदिमें कपटरूप प्रवृत्ति करना **माया क्रिया** है।

(२४) प्रशंसा आदिसे किसीको मिथ्यात्व रूप परिणतिमें दृढ़ करना **मिथ्यादर्शन क्रिया** है।

(२५) चारित्र मोहनीयके उदयसे त्यागरूप प्रवृत्ति नहीं होना **अप्रत्याख्यान क्रिया** है।

आस्रवकी विशेषतामें कारण—

तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्य-स्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अर्थ—तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण विशेष और वीर्यविशेषसे आस्रवमें विशेषता—हीनाधिकता होती है।

तीव्रभाव—अत्यन्त बढ़े हुए क्रोधादिके द्वारा जो तीव्ररूप भाव होते हैं उनको तीव्रभाव कहते हैं।

मन्दभाव—कषायोंकी मन्दतासे जो भाव होते हैं उन्हें मन्द भाव कहते हैं।

ज्ञातभाव—यह प्राणी मारनेके योग्य है इस तरह जानकर प्रवृत्त होनेको ज्ञातभाव कहते हैं।

अज्ञातभाव—प्रमाद अथवा अज्ञानसे प्रवृत्ति करनेको अज्ञात भाव कहते हैं।

अधिकरण—जिसके आश्रय अर्थ रहे उसे अधिकरण कहते हैं।

अधिकरणके भेद—

अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अधिकरणके दो भेद हैं—१ जीव और २ अजीव। अर्थात् आस्रव, जीव और अजीव दोनोंके आश्रय हैं ॥ ७ ॥

जीवाधिकरणके भेद—

आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमत-कषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥८॥

अर्थ—आदिका जीवाधिकरण आस्रव—संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन वचन कायरूप तीन योग, कृत कारित अनुमोदना, तथा क्रोधादि चार कषायोंकी विशेषतासे १०८ भेदरूप है।

भावार्थ—संरम्भादि तीनोंमें तीन योगोंका गुणा करनेसे ९ भेद हुए। इन ९ भेदोंमें कृत आदि तीनको गुणा करने पर २७ भेद हुए और इन २७ भेदोंमें ४ कषायका गुणा करनेसे कुल १०८ भेद हुए।

संरम्भ—हिंसादि पापोंके करनेका मनमें विचार करना संरम्भ है।

समारम्भ—हिंसादि पापोंके कारणोंका अभ्यासकरना समारंभ है।

आरम्भ—हिंसादि पापोंके करनेका प्रारम्भ करदेना आरम्भ है।

कृत—स्वयं करना कृत है।

कारित—दूसरेसे कराना कारित है।

अनुमत—दूसरेके द्वारा कियेहुए कार्यको भला समझना॥८॥

अजीवाधिकरणके भेद—

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्॥ ९॥

अर्थ—पर अर्थात् अजीवाधिकरण आस्रव—दो प्रकारकी निर्वतना, चार प्रकारका निक्षेप, दो प्रकारका संयोग और तीन प्रकार निसर्ग, इसतरह ११ भेदवाला है।

निर्वर्तना—रचना करनेको निर्वर्तना कहते हैं। इसके २ भेद हैं—१ मूलगुण निर्वर्तना और २ उत्तरगुण निर्वर्तना। शरीर मन तथा श्वासोच्छ्वासकी रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है। और काष्ठ, मिट्टी आदिसे चित्र वगैरहकी रचना करना उत्तरगुणनिर्वर्तना है।

निक्षेप—वस्तुके रखनेको निक्षेप कहते हैं—इसके चार भेद हैं—१ अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण, २—दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, ३—सहसानिक्षेपाधिकरण और ४—अनाभोग निक्षेपाधिकरण है। विना देखे किसी वस्तुको रखना अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण है। यत्नाचार रहित होकर रखनेको दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण कहते हैं। शीघ्रतासे रखना सहसा निक्षेपाधिकरण है। और किसी वस्तुको

योग्य स्थानमें न रखकर विना देखे ही यहां वहां रख देना अनाभोग निक्षेपाधिकरण है।

संयोग—मिला देनेका नाम संयोग है। इसके दो भेद हैं—१—भक्तपान संयोग, २—उपकरण संयोग। आहार पानीको दूसरे आहार पानीमें मिलाना भक्तपान संयोग है। और कमण्डलु आदि उपकरणोंको दूसरेकी पीछी आदिसे पोंछना उपकरण संयोग है।

निसर्ग—प्रवर्तनेको निसर्ग कहते हैं। इसके ३ भेद हैं—१—कायनिसर्ग अर्थात् कायको प्रवर्ताना, २—वाङ्निसर्ग अर्थात् वचनोंको प्रवर्ताना और मनोनिसर्ग अर्थात् मनको प्रवर्ताना ॥ ९ ॥

ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्रव—

तत्प्रदोपनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञान और दर्शनके विषयमें किये गये प्रदोप, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मके आस्रव हैं।

प्रदोप—किसी धर्मात्माके द्वारा की गई तत्वज्ञानकी प्रशंसाका नहीं सुहाना प्रदोष है।

निह्नव—किसी कारणसे अपने ज्ञानको छुपाना निह्नव है।

मात्सर्य—वस्तु स्वरूपको जानकर यह भी पण्डित हो जावेगा ऐसा विचार कर किसीको नहीं पढ़ाना मात्सर्य है।

अन्तराय—किसीके ज्ञानाभ्यासमें विघ्न डालना अन्तराय है।

साम्परायिक आस्रवके ३९ भेद।

आसादन—दूसरेके द्वारा प्रकाशित होने योग्य ज्ञानको रोक देना आसादन है।

उपघात—सच्चे ज्ञानमें दोष लगाना उपघात है।* ॥१०॥

असातावेदनीयके आस्रव—

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—(आत्मपरोभयस्थानि) निज पर तथा दोनोंके विषयमें स्थित (दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनानि) दुःख शोक ताप आक्रन्दन वध और परिदेवन ये (असद्वेद्यस्य) असातावेदनीयके आस्रव हैं।

दुःख—पीड़ारूप परिणाम-विशेषको दुःख कहते हैं।

शोक—अपना उपकार करनेवाले पदार्थका वियोग होने पर विकलता होना शोक है।

ताप संसारमें अपनी निन्दा आदिके हो जानेसे पश्चात्ताप करना ताप है।

आक्रन्दन—पश्चात्तापसे अश्रुपात करते हुए रोना आक्रन्दन है।

वध—आयु आदि प्राणोंका वियोग करना वध है।

---

* यद्यपि प्रति समय आयु-कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध हुआ करता है तथापि प्रदोषादि भावोंके द्वारा जो ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मोंका बन्ध होना बताया है सो स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्धकी अपेक्षा समझना चाहिये। अर्थात् उस समय प्रकृति और प्रदेश बन्ध तो सब कर्मोंका हुआ करता है किन्तु स्थिति और अनुभाग बन्ध ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मोंका अधिक होगा।

परिदेवन—संक्लेश परिणामोंका अवलम्बन कर इस तरह रोना कि सुननेवालेके हृदयमें दया उत्पन्न हो जावे सो परिदेवन है।

नोट—यद्यपि शोक आदि दुःखके ही भेद हैं तथापि दुःखकी जातियां बतलानेके लिये सबका ग्रहण किया है॥ ११॥

साता वेदनीयका आस्रव—

भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य॥ १२॥

अर्थ—भूतव्रत्यनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि योग, क्षान्ति, और शौच तथा अर्हद्भक्ति आदि ये सातावेदनीयके आस्रव हैं॥

भूतव्रत्यनुकम्पा—भूत=संसारके समस्त प्राणी और व्रती=अणुव्रत या महाव्रतधारी जीवोंपर दया करना सो भूतव्रत्यनुकम्पा है।

दान—निज और परके उपकारसे योग्य वस्तुके देनेको दान कहते हैं।

सरागसंयमादि—पांच इन्द्रिय और मनके विषयोंसे विरक्त होने तथा छह कायके जीवोंकी हिंसा न करनेको संयम कहते हैं और राग सहित संयमको सरागसंयम कहते हैं।

नोट—यहां आदि शब्दसे संयमासंयम—(श्रावकके व्रत) अकाम निर्जरा—(वन्दीखाने आदिमें संक्लेशतारहित भोगोपभोगका त्याग करना)। और बालतप—(मिथ्या दर्शनसहित तपस्या करना) का भी ग्रहण होता है।

योग—इन सबको अच्छी तरह धारण करना योग कहलाता है।

क्षान्ति—क्रोधादि कषायके अभावको क्षान्ति कहते हैं।

शौच—लोभका त्याग करना शौच है।

नोट—इति शब्दसे अर्हद्भक्ति, मुनियोंकी वैयावृत्ति आदिका ग्रहण करना चाहिये ॥ १२ ॥

दर्शनमोहनीयका आस्रव—

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ।१३।

अर्थ—केवली, श्रुत—(शास्त्र), संघ (मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका) धर्म और देव इनका अवर्णवाद करना दर्शनमोहनीय कर्मका आश्रव है।

अवर्णवाद—गुणवानोंको झूठे दोष लगाना सो अवर्णवाद है।

केवलीका अवर्णवाद—केवली ग्रासाहार करके जीवित रहते हैं, इत्यादि कहना सो केवलीका अवर्णवाद है।

श्रुतका अवर्णवाद—शास्त्रमें मांस भक्षण करना आदि लिखा है ऐसा कहना सो श्रुतका अवर्णवाद है।

संघका अवर्णवाद—ये शूद्र हैं, मलिन हैं, नग्न हैं इत्यादि कहना सो संघका अवर्णवाद है।

धर्मका अवर्णवाद—जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहे हुए धर्ममें कुछ भी गुण नहीं है—उसके सेवन करनेवाले असुर होवेंगे, इत्यादि कहना धर्मका अवर्णवाद है।

देवका अवर्णवाद—देव मदिरा पीते हैं, मांस खाते हैं, जीवोंकी बलिसे प्रसन्न होते हैं, आदि कहना देवका अवर्णवाद है ॥ १३ ॥

चारित्र मोहनीयका आस्रव—

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

अर्थ—कषायके उदयसे होनेवाले तीव्र परिणाम चारित्रमोहनीयके आस्रव हैं ॥ १४ ॥

नरक आयुका आस्रव—

बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

अर्थ—बहुत आरम्भ और परिग्रहका होना नरक आयुका आस्रव है ॥ १५ ॥

तिर्यञ्च आयुका आस्रव—

माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

अर्थ—माया (छलकपट) तिर्यञ्च आयुका आस्रव है ॥१६॥

मनुष्य आयुका आस्रव—

अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रहका होना मनुष्य आयुका आस्रव है।

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

अर्थ—स्वभावसे ही सरल परिणामी होना भी मनुष्य आयुका आस्रव है।

नोट—इस सूत्रको पृथक् लिखनेका आशय यह है कि इस सूत्रमें बताई हुई बातें देवायुके आस्रवमें भी कारण हैं ॥ १८ ॥

सब आयुओंका आस्रव—

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—दिग्व्रतादि ७ शील और अहिंसादि पांच व्रतोंका अभाव भी समस्त आयुओंका आस्रव है।

नोट—शील और व्रतका अभाव रहते हुए जब कषायोंमें अत्यन्त तीव्रता, तीव्रता, मन्दता और अत्यन्त मन्दता होती है तभी वे क्रमसे चारों आयुओंके आस्रवका कारण होते हैं ॥ १९ ॥

देव आयुका आस्रव—

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ—सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बाल तप ये देव आयुके आस्रव हैं।* ॥ २० ॥

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन भी देव आयु कर्मका आस्रव है।

नोट १—इस सूत्रको पृथक् लिखनेका प्रयोजन यह है कि सम्यक्त्व अवस्थामें वैमानिक देवोंकी ही आयुका आस्रव होता है।

नोट २—यद्यपि सम्यग्दर्शन किसी भी कर्मके बन्धमें कारण नहीं है तथापि सम्यग्दर्शनकी अवस्थामें जो रागांश पाया जाता है उसीसे बन्ध होता है। इसी तरह सराग संयम-संयमासंयमआदिके विषयमें भी जानना चाहिये ॥ × ॥ २१ ॥ *

अशुभ नाम कर्मका आस्रव—

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥ २२ ॥

---

* इन सबका शब्दार्थ पीछे १२ वें सूत्रके नोटमें लिखा जाचुका है।

× येनांशेन सुदृष्टि स्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥ —अमृतचन्द्रसूरि

* आयुकर्मका आस्रव सामान्यरूपसे जीवनके त्रिभागमें होता है।

अर्थ—योगोंकी कुटिलता और विसंवादन–अन्यथा प्रवृत्ति कराना अशुभ नाम कर्मका आस्रव है ॥ २२ ॥

शुभ नामकर्मका आस्रव—

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

अर्थ—योग वक्रता और विसंवादनसे विपरीत अर्थात् योगोंकी सरलता और अन्यथा प्रवृत्तिका अभाव ये शुभ नामकर्मके आस्रव हैं ॥ २३ ॥

तीर्थंकर नामकर्मके आस्रव—

दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ २४ ॥

अर्थ—१ दर्शनविशुद्धि—पचीस दोषरहित निर्मल सम्यग्दर्शन, २ विनयसम्पन्नता–रत्नत्रय तथा उनके धारकोंकी विनय करना, ३ शीलव्रतेष्वनतीचार—अहिंसादि व्रत और उनके रक्षक क्रोधत्याग आदि शीलोंमें विशेष प्रवृत्ति, ४–५ अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ—निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखना और संसारसे भयभीत होना ६–७ शक्तितस्त्याग तपसी—यथाशक्ति दान देना और उपवासादि तप करना, ८ साधुसमाधि—साधुओंके विघ्न आदिको दूर करना, ९ वैयावृत्यकरणम्—रोगी तथा बाल वृद्ध मुनियोंकी सेवा

करना, १०-११-१२-१३ अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्ति-अरहन्त भगवान्की भक्ति करना-दीक्षा देनेवाले आचार्योंकी भक्ति करना, उपाध्यायोंकी भक्ति करना, शास्त्रकी भक्ति करना, १४ आवश्यकापरिहाणिः-सामायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओंमें हानि नहीं करना, १५ मार्गप्रभावना-जैन धर्मकी प्रभावना करना और १६ प्रवचनवत्सलत्वम्-गोवत्सकी तरह धर्मात्मा जीवोंसे स्नेह रखना। ये सोलह भावनायें तीर्थंकर प्रकृति नामक नामकर्मके आस्रव हैं।

नोट—इन भावनाओंमें दर्शनविशुद्धि मुख्य भावना है। उसके अभावमें सबके अथवा यथासंभव हीनाधिक होने पर भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव नहीं होता और उसके रहते हुए अन्य भावनाओंके अभावमें भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव होता है* ॥ २४ ॥

नीचगोत्रकर्मका आस्रव—

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥

अर्थ—(परात्मनिन्दाप्रशंसे) दूसरेकी निंदा और अपनी प्रशंसा करना, (च) तथा (सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने) दूसरेके मौजूद गुणोंको ढांकना और अपने झूठे गुणोंको प्रकट करना, ये नीच कर्मगोत्रके आस्रव हैं ॥ २५ ॥

उच्चगोत्रकर्मका आस्रव—

तद्विपर्ययो नीचर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

---

* इस प्रकृतिके उदयसे समवसरणमें अष्ट प्रातिहार्य रूप विभूति प्राप्त होती है।

अर्थ—(तद्विपर्ययः) नीच गोत्रके आस्रवोंसे विपरीत अर्थात् परप्रशंसा तथा आत्मनिन्दा (च) और (नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ) नम्र वृत्ति तथा मदका अभाव ये (उत्तरस्य) उच्च गोत्रकर्मके आस्रव हैं ॥२६॥

· अन्तरायकर्मका आस्रव—

विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

अर्थ—परके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यमें विघ्न करना, अन्तरायकर्मका आस्रव है ॥ २७ ॥

इति श्रीमदुमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली।

(१) योग किसे कहते हैं? और उसके कितने भेद हैं?

(२) अजीवाधिकरण आस्रवके भेद बताओ।

(३) जब कि आयुको छोड़कर शेष सात कर्मोंका बन्ध प्रति समय होता रहता है तब प्रदोषादि विशेष २ कर्मोंके आस्रव किस प्रकार हो सकेंगे?

(४) साम्परायिक और ईर्यापथ आस्रवमें उदाहरण देकर भेद समझाओ।

(५) जब कि सम्यग्दर्शन मोक्षका मार्ग है तब उसे देव आयुका कारण क्यों लिखा?

(६) एक मिथ्यादृष्टि जीव विनयसम्पन्नता आदि पन्द्रह भावनाओंका पालनकर तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव कर सकता है या नहीं? यदि नहीं तो क्यों?

(७) इस संसारमें क्या कोई ऐसे भी जीव हैं जिनके किसी भी कर्मका आस्रव नहीं होता हो ?

(८) नीचे लिखे हुए शब्दोंके लक्षण बताओ—

निह्नव, सरागसंयम, बालतप, योगवक्रता, अनुत्सेक, साधु-समाधि, अवर्णवाद, समारम्भ और ईर्यापथ आस्रव ॥

सप्तम अध्याय ।

शुभास्रवका वर्णन ।

व्रतका लक्षण—

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥

अर्थ— हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंसे भावपूर्वक विरक्त होना व्रत कहलाता है ॥ १ ॥

व्रतके भेद—

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥

अर्थ— व्रतके दो भेद हैं—१ अणुव्रत और २ महाव्रत । हिंसादि पापोंका एकदेश त्याग करनेसे अणुव्रत और सर्वदेश त्याग करनेसे महाव्रत होते हैं ॥ २ ॥

व्रतोंकी स्थिरताके कारण—

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥

अर्थ—उन व्रतोंकी स्थिरताके लिये प्रत्येक व्रतकी पांच पांच भावनाएं हैं ।

भावना—किसी वस्तुका बार बार चिंतवन करना सो भावना है ॥ ३ ॥

अहिंसा व्रतकी पांच भावनाएं—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥

अर्थ—वाग्गुप्ति—वचनको रोकना, मनोगुप्ति—मनकी प्रवृत्तिको रोकना, ईर्यासमिति—चार हाथ जमीन देखकर चलना, आदान-निक्षेपण समिति—भूमिको जीवरहित देखकर सावधानीसे किसी वस्तुको उठाना, रखना और आलोकितपान भोजन—देख शोधकर भोजनपान ग्रहण करना ये पांच अहिंसा व्रतकी भावनाएं हैं ॥ ४ ॥

सत्यव्रतकी भावनाएं—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्य-नुवीचिभाषणं च पंच ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोध प्रत्याख्यान—क्रोधका त्याग करना, लोभ प्रत्या-ख्यान—लोभका त्याग करना, भीरुत्व प्रत्याख्यान—भयका त्याग करना, हास्य प्रत्याख्यान—हास्यका त्याग करना और अनुवीचि भाषण—शास्त्रकी आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना, ये पांच सत्य व्रतकी भावनाएं हैं ॥ ५ ॥

अचौर्य व्रतकी भावनाएं—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्य-शुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥

अर्थ—शून्यागार वास—पर्वतोंकी गुफा, वृक्षकी कोटर आदि निर्जन स्थानोंमें रहना, विमोचिता वास—दूसरेके द्वारा छोड़े हुए

स्थानमें निवास करना, परोपरोधाकरण—अपने स्थानपर ठहरे हुए दूसरेको नहीं रोकना, भैक्ष्यशुद्धि—चरणानुयोग शास्त्रके अनुसार भिक्षाकी शुद्धि रखना, और सधर्माविसंवाद—सहधर्मी भाइयोंसे यह हमारा है. यह आपका है इत्यादि कलह नहीं करना, ये पांच अचौर्य व्रतकी भावनाएं हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्य व्रतकी पांच भावनाएं—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥७॥

अर्थ—स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग—स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाओंके सुननेका त्याग करना, तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग—स्त्रियोंके मनोहर अङ्गोंके देखनेका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरण त्याग - अव्रत अवस्थामें भोगे हुए विषयोंके स्मरणका त्याग करना, वृष्येष्टरस त्याग—कामवर्धक गरिष्ठ रसोंका त्याग करना और स्वशरीरसंस्कार त्याग—अपने शरीरके संस्कारोंका त्याग करना, ये पांच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएं हैं ॥ ७ ॥

परिग्रहत्याग व्रतकी भावनाएं—

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥८॥

अर्थ—स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट आदि विषयोंमें क्रमसे रागद्वेषका त्याग करना, ये पांच परिग्रह त्याग व्रतकी भावनाएं हैं ॥ ८ ॥

हिंसादि पांच पापोंके विषयमें करनेयोग्य विचार—

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—(हिंसादिषु) हिंसादि पांच पापोंके होनेपर (इह) इस लोकमें तथा (अमुत्र) परलोकमें (अपायावद्यदर्शनम्) सांसारिक और पारमार्थिक प्रयोजनोंका नाश तथा निन्दाको देखना पड़ता है ऐसा विचार करे।

भावार्थ—हिंसादि पाप करनेसे इसलोक तथा परलोकमें अनेक आपत्तियां प्राप्त होती हैं और निन्दा भी होती है, इसलिये इनको छोड़ना ही अच्छा है ॥ ९ ॥

दुःखमेव वा ॥ १० ॥

अर्थ—अथवा हिंसादिक पांच पाप दुःखरूप ही हैं ऐसा विचार करे।

नोट—यहां कार्यमें कारणका उपचार समझना चाहिये, क्योंकि हिंसादि दुःखके कारण हैं पर यहां उन्हें कार्य अर्थात् दुःखरूप वर्णन किया है ॥ १० ॥

निरन्तर चिन्तवन करने योग्य चार भावनाएं—

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनयेषु ॥ ११ ॥

अर्थ—(च) और (सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु) सत्त्व[1], गुणाधिक[2], क्लिश्यमान[3] और अविनेय[4] जीवोंमें क्रमसे (मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि) मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ भावना भावे।

१-प्राणीमात्र, २-जो गुणोंसे अधिक हो, ३-दुःखी-रोगी वगैरह, ४-मिथ्यादृष्टि-उद्दण्डप्रकृतिके धारक।

मैत्री—दूसरोंको दुःख न हो ऐसे अभिप्रायको मैत्री भावना कहते हैं।

प्रमोद—अधिक गुणोंके धारी जीवोंको देखकर मुखप्रसन्नता आदिसे प्रकट होनेवाली अन्तरङ्गकी भक्तिको प्रमोद कहते हैं।

कारुण्य—दुःखी जीवोंको देख कर उनके उपकार करनेके भावोंको कारुण्यभाव कहते हैं।

माध्यस्थ—जो जीव तत्त्वार्थश्रद्धानसे रहित हैं तथा हितका उपदेश देनेसे उलटे चिढ़ते हैं उनमें राग द्वेषका अभाव होना सो माध्यस्थ भावना है* ॥ ११ ॥

संसार और शरीरके स्वभावका विचार—

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥

अर्थ—संवेग (संसारके भय) और वैराग्य (रागद्वेषके अभाव)के लिये क्रमसे संसार और शरीरके स्वभावका चिंतवन करे ॥ १२ ॥

हिंसा पापका लक्षण—

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

---

* मैत्रीभाव जगतमें मेरा सब जीवोंसे नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणा स्रोत बहे ॥
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूं मैं उनपर ऐसी परिणति होजावे ॥
गुणीजनोंको देख हृदयमें मेरे प्रेम उमड़ आवे।
—जुगलकिशोर 'मुख्त्यार'।

अर्थ—प्रमादके योगसे यथासंभव द्रव्य[2] प्राण वा भाव[3] प्राणोंका वियोग करना सो हिंसा है।

नोट १—जिस समय कोई व्रती जीव ईर्यासमितिसे गमन कर रहा हो, यदि उस समय कोई क्षुद्र जीव अचानक उसके पैरके नीचे आकर दब जावे तो वह व्रती उस हिंसा पापका भागी नहीं होगा क्योंकि उनके प्रमाद नहीं है।

नोट २—एक जीव किसी जीवको मारना चाहता था पर मौका न मिलनेसे मार न सका तो भी वह हिंसाका भागी होगा क्योंकि वह प्रमाद सहित है और अपने भावप्राणोंकी हिंसा करनेवाला है ॥ १३ ॥

असत्यका लक्षण—

असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥

अर्थ—प्रमादके योगसे जीवोंको दुःखदायक वा मिथ्यारूप वचन बोलना सो असत्य है ॥ १४ ॥

स्तेय-चोरीका लक्षण—

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रमादके योगसे विना दी हुई किसीकी वस्तुको ग्रहण करना सो चोरी है ॥ १५ ॥

१-पांच इन्द्रिय, चार कषाय, चार विकथा (स्त्री० राज० राष्ट्र० और भोजन०) राग द्वेष और निद्रा ये १५ प्रमाद हैं।

२-पांच इन्द्रिय, ३ तीन बल, आयु और स्वासोच्छ्वास ये द्रव्य प्राण हैं। ३-ज्ञानदर्शनको भाव प्राण कहते हैं।

कुशीलका लक्षण—

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थ—मैथुनको अब्रह्म अर्थात् कुशील कहते हैं।

मैथुन—चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे राग परिणाम सहित स्त्री पुरुषोंके परस्पर स्पर्श करनेकी इच्छाको मैथुन कहते हैं ॥१६॥

परिग्रह पापका लक्षण—

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

अर्थ—मूर्च्छाको परिग्रह कहते हैं।

मूर्च्छा—बाह्य धन, धान्यादि तथा अंतरङ्ग, क्रोधादि कषायोंमें ये मेरे हैं ऐसा भाव रखना सो मूर्च्छा है ॥ ७१ ॥

व्रतीकी विशेषता—

निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥

अर्थ—शल्य रहित जीव ही व्रती है।

शल्य—जो आत्माको कांटेकी तरह दुःख दे उसे शल्य कहते हैं। उसके तीन भेद हैं— १ **मायाशल्य** (छलकपट करना) २ **मिथ्यात्वशल्य** (तत्वोंका श्रद्धान न होना) और ३ **निदानशल्य** आगामी कालमें विषयोंकी वांछा करना।

जबतक इनमेंसे एक भी शल्य रहती है तबतक जीव व्रती नहीं होसक्ता।

व्रतीके भेद—

अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

अर्थ—अगारी (गृहस्थ) और अनगारी (गृहत्यागी मुनि) इस प्रकार व्रतीके दो भेद हैं।

अगारीका लक्षण—

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

अर्थ—अणु अर्थात एकदेश व्रत पालनेवाला जीव अगारी कहलाता है। *

अणुव्रतके पांच भेद हैं—१ अहिंसाणुव्रत, २ सत्याणुव्रत, ३ अचौर्याणुव्रत, ४ ब्रह्मचर्याणुव्रत और ५ परिग्रह परिमाणाणुव्रत।

अहिंसाणुव्रत—संकल्पपूर्वक त्रस जीवोंकी हिंसाका परित्याग करना सो अहिंसाणुव्रत है।

सत्याणुव्रत—राग, द्वेष, भय आदिके वश हो स्थूल असत्य बोलनेका त्याग करना सत्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत—स्थूल चोरीके त्यागको अचौर्याणुव्रत कहते हैं।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—परस्त्री सेवनका त्याग करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

परिग्रह परिमाणाणुव्रत—आवश्यकतासे अधिक परिग्रहका त्याग कर शेषका परिमाण करना सो परिग्रह परिमाणाणुव्रत है॥२०॥

अणुव्रतके सहायक सात शीलव्रत—

दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ॥ २१ ॥

* महाव्रतोंको पालनेवाले मुनि अनगारी कहलाते हैं। इस अध्यायमें अणुव्रत धारियोंके ही विशेष चारित्रका वर्णन है।

श्रावकके बारह व्रत ।

देशव्रत

अणुव्रत	गुणव्रत	शिक्षाव्रत
१ अहिंसाणुव्रत	१ दिग्व्रत	१ सामायिक
२ सत्याणुव्रत	२ देशव्रत	२ प्रोषधोपवास
३ अचौर्याणुव्रत	३ अनर्थदण्डव्रत	३ भोगोपभोग परिमाण
४ ब्रह्मचर्याणुव्रत		४ अतिथिसंविभाग
५ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत		

५ + ३ + ४ = १२

अतिचार प्रदर्शन ।

१	व्रत	अतिचार
१	सम्यग्दर्शन	शङ्का, आकांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टिसंस्तव ।
	५ अणुव्रत	
२	१ अहिंसाणुव्रत	वध, बन्ध, छेद, अतिभारारोपण, अन्नपाननिरोध ।
३	२ सत्याणुव्रत	मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार, साकारमन्त्रभेद ।
४	३ अचौर्याणुव्रत	स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान, प्रतिरूपकव्यवहार ।
५	४ ब्रह्मचर्याणुव्रत	परविवाहकरण, परिगृहीतेत्वरिकागमन, अपरिगृहीतेत्वरिकागमन अनङ्ग क्रीड़ा, कामतीव्राभिनिवेश ।
६	५ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत	क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रम, हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम, धनधान्यप्रमाणातिक्रम, दासीदासप्रमाणातिक्रम, कुप्य प्रमाणातिक्रम ।
	३ गुणव्रत	
७	१ दिग्व्रत	ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि, स्मृत्यन्तराधान ।
८	२ देशव्रत	आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, पुद्गलक्षेप ।
९	३ अनर्थदण्डव्रत	कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, उपभोगपरिभोगानर्थक्य ।
	४ शिक्षाव्रत	
१०	१ सामायिक	कायदुःप्रणिधान, वाग्दुःप्रणिधान, मनोदुःप्रणिधान, अनादर, स्मृत्यनुपस्थान ।
११	२ प्रोषधोपवास	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण, अनादर, स्मृत्यनुपस्थान ।
१२	३ भोगोपभोगपरिमाण	सचित्त, सचित्त सम्बन्ध, सचित्त संमिश्र, अभिषव, दुःपक्वाहार ।
१३	४ अतिथिसंविभाग	सचित्त निक्षेप, सचित्त विधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, कालव्यतिक्रम ।
१४	सल्लेखना	जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध, निदान ।

अर्थ—वह व्रती दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत इन तीन गुणव्रतोंसे तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिणाम और अतिथिसंविभागव्रत इन चार शिक्षाव्रतोंसे सहित होता है। अर्थात् व्रती श्रावक पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत[1] और चार शिक्षाव्रत[2] इस प्रकार वारह व्रतोंका धारी होता है।

३ गुणव्रत।

दिग्व्रत—मरणपर्यन्त सूक्ष्म पापोंकी निवृत्तिकेलिये दशोंदिशाओंमें आनेजानेका परिमाण कर उससे वाहर नहीं जाना सो दिग्व्रत है।

देशव्रत—जीवनपर्यन्तके लिये किये हुये दिग्व्रतमें और भी संकोच करके घड़ी घण्टा दिन महीना आदि तक किसी गृह मुहल्ले आदि तक आनाजाना रखना सो देशव्रत है[3]।

अनर्थदण्डव्रत-प्रयोजन रहित पापवर्धक क्रियाओंका त्याग करना सो अनर्थदण्डव्रत है। इसके पांच भेद हैं। १ पापोपदेश (हिंसा आरम्भ आदि पापके कामोंका उपदेश देना), २ हिंसादान (तलवार आदि हिंसाके उपकरण देना), ३ अपध्यान (दूसरेका वुरा विचारना), ४ दुःश्रुति (राग द्वेषको वढ़ानेवाले खोटे शास्त्रोंका सुनना) और ५ प्रमादचर्या, (विना प्रयोजन यहां वहां घूमना तथा पृथ्वी आदिका खोदना।)

शिक्षाव्रत।

१ सामायिक—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे

१–जो अणुव्रतोंका उपकार करें उन्हें गुणव्रत कहते हैं। २–जिनसे मुनिव्रत पालन करनेकी शिक्षा मिले उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। ३–दिग्व्रत और देशव्रतमें समयकी मर्यादाकी अपेक्षा अंतर होता है।

पांचों पापोंका त्याग करना सो सामायिक है।

२ प्रोपधोपवास—पहले और आगेके दिनोंमें एकाशनके साथ अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास आदि करना प्रोपधोपवास है।

३ उपभोग परिभोग परिमाणव्रत—भोग[1] और उपभोग[2]की वस्तुओंका परिमाण कर उससे अधिकमें ममत्व नहीं करना सो उपभोग परिभोग परिमाणव्रत है।

४ अतिथि संविभागव्रत—अतिथि अर्थात् मुनियोंके लिये आहार कमण्डलु पीछी वसतिका आदिका दान देना सो अतिथि-संविभागव्रत है।

व्रतीको सल्लेखना धारणकरनेका उपदेश—

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥

अर्थ—गृहस्थ मरणके समय होनेवाली सल्लेखनाको प्रीति पूर्वक सेवन करता है।

सल्लेखना—इसलोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयोजनकी अपेक्षा न करके शरीर और कपायके कृश करनेको सल्लेखना कहते हैं ॥ २२ ॥

सम्यग्दर्शनके[3] पांच अतिचार[4]—

शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥ २३ ॥

१—जो एकबार भोगनेमें आवे;। २—जो बार बार भोगनेमें आवे। ३—जिसका निर्दोष सम्यग्दर्शन हो वही व्रत पाल सकता है, इसलिये पहले सम्यग्दर्शनके पांच अतिचार कहते हैं। ४ व्रतके एकदेश भङ्ग होनेको अतिचार कहते हैं।

अर्थ—१ शङ्का (जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहे हुये सूक्ष्म पदार्थोंमें सन्देह करना अथवा सप्तभय[1] करना), कांक्षा (सांसारिक सुखोंकी इच्छा करना) विचिकित्सा (दुखी दरिद्री जीवोंको अथवा रत्नत्रयसे पवित्र पर बाह्यमें मलिन मुनियोंके शरीरको देख कर ग्लानि करना), अन्यदृष्टिप्रशंसा (मनसे मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान आदिको अच्छा समझना) और अन्यदृष्टिसंस्तव (वचनसे मिथ्यादृष्टियोंकी प्रशंसा करना) ये पांच सम्यग्दर्शनके अतिचार हैं ॥ २३ ॥

५ व्रत और ७ शीलोंके अतिचारोंकी संख्या—

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पांच व्रत और सात शीलोंमें भी क्रमसे पांच पांच अतिचार होते हैं, जिनका वर्णन आगेके सूत्रोंमें है ॥ २४ ॥

अहिंसाणुव्रतके पांच अतिचार—

बंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५॥

अर्थ—बन्ध (इच्छित स्थानमें जानेसे रोकनेके लिये रस्सी आदिसे बांधना), वध (कोड़ा बेंत आदिसे मारना), छेद (नाक कान आदि अङ्गोंका छेदना), अतिभारारोपण (शक्तिसे अधिक भार लादना) और अन्नपाननिरोध (समयपर खाना पीना नहीं देना) ये पांच अहिंसाणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २५ ॥

---

१ इसलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, और आकस्मिकभय ये सात भय हैं।

सत्याणुव्रतके अतिचार—

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥ २६ ॥

अर्थ—मिथ्योपदेश (झूठा उपदेश देना) रहोभ्याख्यान (किसीकी एकान्तकी बातको प्रकट करना) कूटलेखक्रिया (झूठे दस्तावेज आदि लिखना) न्यासापहार (किसीकी धरोहरका अपहरण करना) और साकारमन्त्रभेद (हाथ चलाना आदिके द्वारा दूसरेके अभिप्रायको जानकर उसे प्रकाशित कर देना) ये पांच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २६ ॥

अचौर्याणुव्रतके पांच अतिचार—

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ—स्तेनप्रयोग–(चोरको चोरीके लिये प्रेरणा करना व उसके उपाय बताना), तदाहृतादान (चोरके द्वारा चुराई हुई वस्तुको खरीदना), विरुद्ध राज्यातिक्रम (राजाकी आज्ञाके विरुद्ध चलना, टाउनड्यूटी, टैक्स वगैरह नहीं देना)*, हीनाधिक मानोन्मान (देने लेनेके बांट तराजू वगैरहको कमती बढ़ती रखना) और प्रतिरूपकव्यवहार (बहुमूल्य वस्तुमें अल्प मूल्यकी वस्तु मिलाकर असली भावसे बेचना) ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥२७॥

---

* अथवा राज्यमें विप्लव होनेपर अधिक मूल्यकी वस्तुको अल्प मूल्यमें खरीदना और अल्प मूल्यकी वस्तुको अधिक मूल्यमें बेचना।

ब्रह्मचर्याणुव्रतके पांच अतिचार—

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥

अर्थ—परविवाहकरण (दूसरेके पुत्र पुत्रियोंका विवाह करना कराना), परिगृहीतेत्वरिकागमन (पतिसहित व्यभिचारिणी स्त्रियोंके पास आना जाना-लेनदेन रखना, रागभावपूर्वक बातचीत करना), अपरिगृहीतेत्वरिकागमन (पतिरहित वेश्या आदि व्यभिचारिणी स्त्रियोंके यहां आना जाना, लेनदेन आदिका व्यवहार रखना), अनङ्गक्रीड़ा (कामसेवनके लिये निश्चित अङ्गोंको छोड़कर अन्य अङ्गोंसे काम सेवन करना) और कामतीव्राभिनिवेश (कामसेवनकी अत्यन्त अभिलाषा रखना) ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २८ ॥

परिग्रहपरिमाणाणुव्रतके अतिचार—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

अर्थ—क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम (खेत तथा रहनेके घरोंके प्रमाणका उल्लंघन करना), हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम (चांदी और सोनेके प्रमाणका उल्लंघन करना), धनधान्यप्रमाणातिक्रम (गाय, भैंस आदि पशु तथा गेंहू चना आदि अनाजके प्रमाणका उल्लंघन करना), दासीदासप्रमाणातिक्रम (नौकर-नौकरानियोंके प्रमाणका उल्लंघन करना) और कुप्यप्रमाणातिक्रम (वस्त्र तथा वर्तन आदिके प्रमाणका उल्लंघन करना), ये पांच परिग्रहपरिमाणाणुव्रतके अतिचार हैं ।

दिग्व्रतके अतिचार—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥

अर्थ—ऊर्ध्वव्यतिक्रम (प्रमाणसे अधिक ऊंचाईवाले पर्वतादि पर चढ़ना), अधोव्यतिक्रम (प्रमाणसे अधिक नीचाईवाले कुए आदिमें उतरना), तिर्यग्व्यतिक्रम (समान स्थानमें प्रमाणसे अधिक लम्बे जाना), क्षेत्रवृद्धि (प्रमाण किये हुए क्षेत्रको बढ़ा लेना) और स्मृत्यन्तराधान (किये हुए प्रमाणको भूल जाना) ये पांच दिग्व्रतके अतिचार हैं ॥ ३० ॥

देशव्रतके अतिचार—

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥

अर्थ—आनयन (मर्यादासे बाहरकी चीजको बुलाना), प्रेष्य-प्रयोग (मर्यादाके बाहर नौकर आदिको भेजना), शब्दानुपात (खांसी आदिके शब्दके द्वारा मर्यादासे बाहरवाले आदमियोंको अपना अभिप्राय समझा देना), रूपानुपात (मर्यादासे बाहर रहनेवाले आदमियोंको अपना शरीर दिखाकर इशारा करना) और पुद्गलक्षेप (मर्यादासे बाहर कंकर पत्थर फेंकना), ये पांच देशव्रतके अतिचार हैं ॥ ३१ ॥

अनर्थदण्डव्रतके अतिचार—

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्याऽसमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अर्थ—कन्दर्प (रागसे हास्य सहित अशिष्ट वचन बोलना),

कौत्कुच्य (शरीरसे कुचेष्टा करते हुये अशिष्ट वचन बोलना), मौखर्य (धृष्टता पूर्वक आवश्यक्तासे अधिक बोलना), असमीक्ष्याधिकरण (विना प्रयोजन मन वचन कायकी अधिक प्रवृत्ति करना) और उपभोग-परिभोगानर्थक्य (भोग उपभोगके पदार्थोंका जरूरतसे अधिक संग्रह करना), ये पांच अनर्थदण्डव्रतके अतिचार हैं ॥ ३२ ॥

सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार—

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि॥ ३३॥

अर्थ—मनोयोग दुष्प्रणिधान (मनकी अन्यथा प्रवृत्ति करना), वाग्योगदुष्प्रणिधान (वचनकी अन्यथा प्रवृत्ति करना), काययोगदुष्प्रणिधान (शरीरकी अन्यथा प्रवृत्ति करना), अनादर (उत्साह रहित होकर सामायिक करना) और स्मृत्यनुपस्थान (एकाग्रताके अभावमें सामायिक पाठ वगैरहका भूल जाना), ये पांच सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥ ३३ ॥

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके अतिचार—

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

अर्थ—अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग (विना देखी विना शोधी हुई जमीनमें मल मूत्रादिका क्षेपण करना), अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान, (विना देखे विना शोधे हुए पूजन आदिके उपकरण उठाना), अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण (विना देखे विना शोधे हुए वस्त्र चटाई आदिको बिछाना) अनादर (भूखसे व्याकुल होकर आवश्यक धर्मकार्योंको उत्साह रहित होकर करना) और स्मृत्य-

नुपस्थान (करने योग्य आवश्यक धर्मकार्योंको भूल जाना), ये पांच प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥ ३४ ॥

उपभोग परिभोग परिमाणव्रतके अतिचार—

सचित्तसम्बन्धसंमिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥

अर्थ—सचित्ताहार (जीवसहित—हरे फल आदिका भक्षण करना), सचित्तसम्बन्धाहार (सचित्त पदार्थसे सम्बन्धको प्राप्त हुई चीजका आहार करना). सचित्तसन्मिश्राहार (सचित्त पदार्थसे मिले हुये पदार्थका आहार करना), अभिषवाहार (गरिष्ठ पदार्थका आहार करना) और दुःपक्वाहार (अधपके अथवा अधिक पके हुये पदार्थका आहार करना), ये पांच उपभोग परिभोगव्रतके अतिचार हैं ॥ ३५॥

अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार—

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकाला-तिक्रमाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सचित्तनिक्षेप (सचित्त पत्र आदिमें भोजनको रखकर देना), सचित्तापिधान (सचित्त पत्र आदिसे ढके हुये भोजनादिका दान करना), परव्यपदेश (दूसरे दातारकी वस्तुको देना), मात्सर्य (अनादर पूर्वक देना अथवा दूसरे दातासे ईर्ष्या करके देना) और कालातिक्रम (योग्य कालका उल्लंघन कर अकालमें देना), ये पांच अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार हैं ॥ ३६ ॥

सल्लेखनाके अतिचार—

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्ध-निदानानि ॥ ३७ ॥

अर्थ—जीविताशंसा (सल्लेखना धारण कर जीनेकी इच्छा करना), मरणाशंसा (वेदनासे व्याकुल होकर शीघ्र मरनेकी वाञ्छा करना), मित्रानुराग (मित्रोंका स्मरण करना), सुखानुबन्ध (पूर्वकालमें भोगे हुये सुखोंका स्मरण करना) और निदान (आगामी कालमें विषयोंकी इच्छा करना, ये पांच सल्लेखना व्रतके अतिचार हैं ॥ ३७॥

नोट—ऊपर कहे हुए ७० अतिचारोंका त्यागी ही निर्दोष व्रती कहलाता है।

दानका लक्षण-

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—(अनुग्रहार्थम्) अपने और परके उपकारके लिये (स्वस्य) धनादिकका (अतिसर्गः) त्याग करना (दानम्) दान है।

नोट—दान देनेमें अपना उपकार तो यह है कि पुण्यका बंध होता है और परका उपकार यह है कि दान लेनेवालेके सम्यग्ज्ञान आदि गुणोंकी वृद्धि होती है ॥ ३८ ॥

दानमें विशेषता—

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

अर्थ—विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातृविशेष और पात्रविशेषसे उस दानमें विशेषता होती है।

विधिविशेष—नवधाभक्तिके क्रमको विधिविशेष कहते हैं।

द्रव्यविशेष—तप स्वाध्याय आदिकी वृद्धिमें कारण आहारको द्रव्यविशेष कहते हैं।

दातृविशेप—श्रद्धा आदि सप्तगुण सहित दाताको दातृविशेप कहते हैं।

पात्रविशेप—सम्यक्चारित्र आदि गुणसहित मुनि आदिको पात्रविशेप कहते हैं ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली।

(१) व्रती किसे कहते हैं ?

(२) अचौर्य व्रतकी पांच भावनाओंको समझाओ।

(३) मैत्री प्रमोद कारुण्य और माध्यस्थ भावनाका क्या स्वरूप है ?

(४) इर्यासमितिसे चलनेवाला मनुष्य अकस्मात् किसी जीवके मरजाने पर पापका भागी होगा या नहीं ?

(५) मूर्च्छाकी क्या परिभापा है–

(६) सम्यग्दर्शनके अतिचार बतलाकर सल्लेखनाका स्वरूप समझाओ।

(७) नीचे लिखे हुये शब्दोंके अर्थ बतलाओ–साकार मन्त्रभेद, विमोचितावास, कुप्य, ऊर्ध्व, व्यतिक्रम, सचित्तसंमिश्राहार और शल्य।

(८) संक्षेपमें श्रावकोंके व्रतोंका वर्णन करो।

(९) दिग्व्रत और देशव्रतमें क्या अन्तर है ?

(१०) किस किस गतिमें व्रत धारण किये जासकते हैं ?

अष्टम अध्याय।

बन्धतत्त्वका वर्णन।

बन्धके कारण—

मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।१

अर्थ—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच कर्मबन्धके कारण हैं।

मिथ्यादर्शन—अतत्त्वोंके श्रद्धानको अथवा तत्त्वोंके श्रद्धान न होनेको मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ गृहीत मिथ्यादर्शन और २ अगृहीत मिथ्यादर्शन।

गृहीत मिथ्यादर्शन—परोपदेशके निमित्तसे जो अतत्व श्रद्धान हो उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

अगृहीत मिथ्यादर्शन—परोपदेशके विना ही केवल मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जो हो उसे अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

मिथ्यादर्शनके ५ भेद और भी हैं—१ एकान्त, २ विपरीत, ३ संशय, ४ वैनयिक और ५ अज्ञान।

एकान्त मिथ्यादर्शन—अनेक धर्मात्मक वस्तुमें यह इसी प्रकार है, इस तरहके एकान्त अभिप्रायको एकान्त मिथ्यादर्शन कहते हैं। जैसे—बौद्ध मतवाले वस्तुको अनित्य ही मानते हैं और वेदान्ती सर्वथा नित्य ही मानते हैं॥ अन्त=धर्म, गुण।

विपरीत मिथ्यादर्शन—परिग्रह सहित भी गुरु हो सक्ता है, केवली कवलाहार करते हैं, स्त्रीको भी मोक्ष प्राप्त हो सक्ता है इत्यादि उल्टे श्रद्धानको विपरीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

संशय मिथ्यादर्शन—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र ये मोक्षके मार्ग हैं अथवा नहीं, इस प्रकारके चलायमान श्रद्धानको संशय मिथ्यादर्शन कहते हैं।

वैनयिक मिथ्यादर्शन—सब प्रकारके देवोंको तथा सब प्रकारके मतोंको समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है।

अज्ञान मिथ्यादर्शन—हिताहितकी परीक्षा न करके श्रद्धान करना अज्ञान मिथ्यात्व है।

अविरति—छह कायके जीवोंकी हिंसाके त्याग न करने और ५ इन्द्रिय तथा मनके विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अविरति कहते हैं। इसके बारह भेद हैं—पृथिवीकायिकाविरति, जलकायिकाविरति इत्यादि।

प्रमाद—५ समिति ३ गुप्ति ८ शुद्धि* १० धर्म इत्यादि अच्छे कार्योंमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न करनेको प्रमाद कहते हैं।×

इसके १५ भेद हैं।

कषाय—इसके २५ भेद हैं।

योग—इसके १५ भेद हैं—४ मनोयोग, ४ वचनयोग और ७ काययोग।

नोट—ये मिथ्यादर्शन आदि सम्पूर्ण तथा पृथक् पृथक् बन्धके कारण हैं। अर्थात् किसीके पांचों ही बन्धके कारण हैं, किसीके

१—पांच स्थावर और त्रस ये छह कायके जीव हैं।

* १ भावशुद्धि, २ कायशुद्धि, ३ विनयशुद्धि, ४ ईर्यापथशुद्धि, ५ भैक्ष्यशुद्धि, ६ प्रतिष्ठापनशुद्धि, ७ शयनासनशुद्धि, और ८ वाक्यशुद्धि।

× प्रमाद और कषायमें सामान्य विशेषका अन्तर है।

अविरति आदि ४, किसीके प्रमाद आदि ३, किसीके कषाय आदि २ और किसीको सिर्फ एक योग ही बन्धका कारण है ॥ १ ॥

बन्धका लक्षण—

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

अर्थ—(जीवः) जीव (सकषायत्वात) कषाय सहित होनेसे (कर्मणः) कर्मके (योग्यान्) योग्य (पुद्गलान्) कार्माण वर्गणा-रूप पुद्गल परमाणुओंको जो (आदत्ते) ग्रहण करता है (सः) वह (बन्धः) बन्ध है।

भावार्थ—सम्पूर्ण लोकमें कार्माण वर्गणा रूप पुद्गल भरे हुए हैं। कषायके निमित्तसे उनका आत्माके साथ सम्बन्ध होजाता है। यही बन्ध कहलाता है।

नोट—इस सूत्रमें 'कर्मयोग्यान्' ऐसा समास न करके जो अलग अलग ग्रहण किया है उससे सूत्रका यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि "जीव कर्मसे सकषाय होता है और सकषाय होनेसे कर्मरूप पुद्गलोंको ग्रहण करता है यही बन्ध कहलाता है" ॥ २ ॥

बन्धके भेद—

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध ये बन्धके चार भेद हैं।

प्रकृति बन्ध—कर्मोंके स्वभावको प्रकृति बन्ध कहते हैं।

स्थिति बन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंका अपने स्वभावसे च्युत नहीं होना सो स्थिति बन्ध है।

अनुभाग बन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मोंके रसविशेषको अनुभाग बन्ध कहते हैं।

प्रदेश बन्ध—ज्ञानावरणादि कर्मरूप होनेवाले पुद्गल स्कन्धोंके परमाणुओंकी संख्याको प्रदेश बन्ध कहते हैं।

नोट—इन चार प्रकारके बन्धोंमें प्रकृति और प्रदेश बन्ध योगके निमित्तसे होते हैं तथा स्थिति और अनुभाग बन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं॥ ३॥

प्रकृति बन्धका वर्णन—प्रकृति बन्धके मूल भेद—

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः॥ ४॥

अर्थ—पहला प्रकृति बन्ध—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे आठ प्रकारका है।

ज्ञानावरण—जो आत्माके ज्ञान गुणको घाते उसे ज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरण—जो आत्माके दर्शनगुणको घाते उसे दर्शनावरण कहते हैं।

वेदनीय—जिसके उदयसे जीवोंको सुख दुःख होवे उसे वेदनीय कहते हैं।

मोहनीय—जिसके उदयसे जीव अपने स्वरूपको भूलकर अन्यको अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं।

आयु—जो इस जीवको नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवमेंसे किसी शरीरमें रोक रखे उसे आयु कर्म कहते हैं।

नाम—जिसके उदयसे शरीर आदिकी रचना हो उसे नामकर्म कहते हैं।

गोत्र—जिसके उदयसे यह जीव ऊँच नीच कुलमें पैदा होवे उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

अन्तराय—जिसके उदयसे दान लाभ भोग उपभोग और वीर्यमें विघ्न आवे उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

नोट—उक्त आठ कर्मोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया (जीवके अनुजीवि[1] गुणोंके घातनेवाले) हैं और वाकीके चार कर्म अघातिया (प्रतिजीवि[2] गुणोंके घातनेवाले) हैं।*

प्रकृति बन्धके उत्तर भेद—

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए ज्ञानावरणादि कर्म क्रमसे ५, ९, २, २८, ४, ४२, २ और ५ भेद वाले हैं ॥ ५ ॥

१-सद्भाव रूपगुण, २-अभाव रूप गुण। * जिस प्रकार एक ही बार खाया हुआ भोजन रस खून आदिक नाना रूप होजाता है उसी तरह एकवार ग्रहण किया हुआ कर्म ज्ञानावरणादि अनेक भेद रूप हो जाता है। विशेषता यह है कि भोजन रस, खून आदि रूप क्रम क्रमसे होता है, परन्तु कर्म ज्ञानावरणादि रूप एक साथ होजाता है।

ज्ञानावरणके पांच भेद—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मतिज्ञानावरण (मतिज्ञानको ढांकनेवाला), श्रुत ज्ञानावरण (श्रुतज्ञानको ढांकनेवाला), अवधि ज्ञानावरण (अवधि-ज्ञानको ढांकनेवाला), मनःपर्यय ज्ञानावरण (मनःपर्यय ज्ञानको ढांकनेवाला) और केवल ज्ञानावरण (केवलज्ञानको ढांकनेवाला) ये पांच ज्ञानावरण कर्मके भेद हैं ॥ ६ ॥

दर्शनावरण कर्मके भेद—

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचला-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

अर्थ—चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरण कर्मके भेद हैं।

चक्षुर्दर्शनावरण—जो कर्म चक्षु-इन्द्रियोंसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे चक्षुर्दर्शनावरण कहते हैं।

अचक्षुर्दर्शनावरण—जिस कर्मके उदयसे चक्षु-इन्द्रियको छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मनसे पदार्थका सामान्य अवलोकन न हो सके उसे अचक्षुर्दर्शनावरण कहते हैं।

अवधि दर्शनावरण—जो कर्म अवधिज्ञानसे पहले होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे अवधि दर्शनावरण कहते हैं।

केवलदर्शनावरण—जो कर्म केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

निद्रा—मद खेद श्रम आदिको दूर करनेके लिये जो शयन करते हैं सो निद्रा है। वह निद्रा जिस कर्मके उदयसे हो वह कर्म निद्रा दर्शनावरण है।

निद्रानिद्रा – नींदके बाद फिर २ नींद आनेको निद्रानिद्रा कहते हैं। निद्रानिद्राके वशीभूत होकर जीव अपनी आंखोंको नहीं खोल सकता।

प्रचला—बैठे २ नेत्र शरीर आदिमें विकार करनेवाली, शोक तथा थकावट आदिसे उत्पन्न हुई नींद प्रचला कहलाती है। प्रचलाके वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है।

प्रचलाप्रचला – प्रचलाके ऊपर प्रचलाके आनेको प्रचलाप्रचला प्रकृति कहते हैं। प्रचलाप्रचलाके द्वारा शयन अवस्थामें मुँहसे लार बहने लगती है तथा अङ्गोपाङ्ग चलने लगते हैं।

स्त्यानगृद्धि—जिस निद्राके द्वारा सोती अवस्थामें भी नाना तरहके आर्त कर्म कर डाले और जागने पर कुछ मालूम ही न हो कि मैंने क्या किया है उसको स्त्यानगृद्धि कहते हैं। * ॥ ७ ॥

१–छद्मस्थ जीवोंके दर्शन और ज्ञान क्रमसे होते हैं अर्थात पहले दर्शन बादमें ज्ञान। परन्तु केवली भगवानके दोनों एक–साथ होते हैं क्योंकि उनके बाधक कर्मोंका एक साथ क्षय होता है।

* यह पांच तरहकी निद्रा जिस कर्मके उदयसे होती है वह निद्रा दर्शनावरण आदि कर्मभेद कहलाता है।

वेदनीयके भेद—

सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥

अर्थ—सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय कर्मके भेद हैं।

सद्वेद्य—जिसके उदयसे देव आदि गतिमें शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त हो उसे सद्वेद्य कहते हैं।

असद्वेद्य—जिसके उदयसे नरकादि गतियोंमें तरह २ के दुःख प्राप्त हों उसे असद्वेद्य कहते हैं ॥ ८ ॥

मोहनीयके भेद—

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः॥९

अर्थ—दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय, कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय इन चार भेदरूप मोहनीय कर्म क्रमसे तीन, दो, नौ और सोलह भेदरूप है। जिनमेंसे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यङ्मिथ्यात्व ये तीन दर्शन मोहनीय कर्मके भेद हैं। अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद चारित्र मोहनीयके हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये ९ अकषाय वेदनीयके भेद हैं और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और

संज्वलन इन चार भेद स्वरूप क्रोध मान माया लोभ ये सोलह भेद कषाय वेदनीयके हैं।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके मुख्यमें दो भेद हैं, १ दर्शमोहनीय और २ चारित्र मोहनीय उनमें दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्र मोहनीयके २५ इस प्रकार कुल मिलाकर मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं।

मिथ्यात्व प्रकृति—जिस कर्मके द्वारा सर्वज्ञ कथित मार्गसे पराङ्मुखता हो अर्थात् मिथ्यादर्शन हो उसे मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।

सम्यक्त्व प्रकृति—जिस प्रकृतिके उदयसे आत्माके सम्यग्दर्शनमें दोष उत्पन्न हों उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति—जिस प्रकृतिके उदयसे मिले हुए दही गुड़के स्वादकी तरह उभयरूप परिणाम हों उसे सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं।*

हास्य—जिसके उदयसे हँसी आवे वह हास्य नोकषाय है।

रति—जिसके उदयसे विषयोंमें प्रेम हो वह रति है।

अरति—जिसके उदयसे विषयोंमें प्रेम न हो वह अरति है।

शोक—जिसके उदयसे शोच-चिन्ता हो वह शोक है।

भय—जिसके उदयसे डर लगे वह भय है।

जुगुप्सा—जिसके उदयसे ग्लानि हो वह जुगुप्सा है।

१—जो आत्माके सम्यक्त्व गुणको घाते। २—जो आत्माके चारित्र गुणको घाते।

* सम्यक्त्व प्रकृति और मिथ्यात्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता किन्तु आत्माके शुभ परिणामोंसे मिथ्यात्व प्रकृतिकी अनुभाग शक्ति हीन होजानेसे इन २ प्रकृतिरूप परिणमन होजाता है।

स्त्रीवेद—जिसके उदयसे पुरुषसे रमनेके भाव हों वह स्त्रीवेद है।

पुंवेद—जिसके उदयसे स्त्रीके साथ रमनेके भाव हों वह पुंवेद है।

नपुंसकवेद—जिसके उदयसे स्त्री पुरुष दोनोंसे रमनेकी इच्छा हो वह नपुंसकवेद है। ×

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ—जो आत्माके स्वरूपाचरण चारित्रको घाते उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्वको अनन्त कहते हैं उसके साथ ही इसका बन्ध होता है इसलिये इसको अनन्तानुबन्धी कहते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ—जिसके उदयसे देशचारित्र न होसके उसे अप्रत्याख्यानावरण० कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ—जो प्रत्याख्यान अर्थात् सकलचारित्रको घाते उसे प्रत्याख्यानावरण० कहते हैं।

संज्वलन क्रोध मान माया लोभ—जिसके उदयसे यथाख्यात चारित्र न होसके उसे संज्वलन० कहते हैं। यह कषाय सम्-अर्थात् संयमके साथ ज्वलित-जागृत रही आती है, इसलिये इसका नाम संज्वलन है।

× हास्य आदि ९ कषाय क्रोधादिकी तरह आत्माके गुणोंका पूरा घात नहीं कर पातीं इसलिये इन्हें नोकषाय (किंचित् कषाय) कहते हैं।

१–शुद्ध आत्माके अनुभवनको स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

२–अ=अल्प-प्रत्याख्यान=चारित्रको आवरण करनेवाला।

३–जो चारित्रमोहनीयके उपशम अथवा क्षयसे होता है उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

नोट—इन कषायोंमें आगे आगे मन्दता है और नीचे नीचे तीव्रता है ॥ ९ ॥

आयुकर्मके भेद—

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

अर्थ—नारकायु, तिर्यगायु, मानुषायु और देवायु ये चार आयुकर्मके भेद हैं।

नारकायु—जिस कर्मके उदयसे जीव नारकीके शरीरमें रुका रहे उसे नारकायु कहते हैं। इसीतरह सब भेदोंमें समझना चाहिये ॥ १० ॥

नामकर्मके भेद—

४ ५ ५ ३ २ ५ ५
गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थंकरत्वं च ॥ ११ ॥
६ ६ ८ ५ २ ५ ४ २

अर्थ—गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास ये इक्कीस तथा प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति ये दश तथा इनसे उलटे साधारण, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, स्थूल, अप-

र्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति, ये दश और तीर्थंकरत्व इस प्रकार सब मिलाकर नाम कर्मके ४२ भेद हैं।*

१ गति—जिसके उदयसे जीव दूसरे भवको प्राप्त करता है उसे गति नामकर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं–१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, और ४ देवगति। जिसके उदयसे आत्माको नरकगति प्राप्त होवे उसे नरकगति नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

२ जाति—जिस कर्मके उदयसे जीव नरकादि गतियोंमें अव्यभिचाररूप समानतासे एकरूपताको प्राप्त होवे वह जाति नामकर्म है। इसके ५ भेद हैं–१ एकेन्द्रिय जाति, २ द्वीन्द्रिय जाति, ३ त्रीन्द्रिय जाति, ४ चतुरिन्द्रिय जाति और ५ पञ्चेन्द्रिय जाति। जिसके उदयसे जीव एकेन्द्रिय जातिमें पैदा हो उसे एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार सब भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

३ शरीर—जिस कर्मके उदयसे शरीरकी रचना हो उसे शरीर नामकर्म कहते हैं। इसके ५ भेद हैं–१ औदारिकशरीर नामकर्म, २ वैक्रियिकशरीर नामकर्म, ३ आहारकशरीर नामकर्म, ४ तैजस शरीर नामकर्म और ५ कार्मणशरीर नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक शरीरकी रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार सब भेदोंके लक्षण जानना चाहिये।

४ अङ्गोपाङ्ग—जिनके उदयसे अङ्ग और उपाङ्गोंकी रचना हो उसे अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं–१ औदा-

* गति आदिके अवान्तर भेद जोडनेसे कुल ९३ भेद होते हैं।

रिक शरीराङ्गोपाङ्ग, २ वैक्रियिक शरीराङ्गोपाङ्ग और ३ आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग। जिसके उदयसे औदारिक शरीरके अंग और उपांगोंकी रचना हो उसे औदारिक शरीरांगोपांग नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार शेष दो भेदोंके लक्षण समझना चाहिये*।

५ निर्माण—जिस कर्मके उदयसे अंगोपांगोंकी यथास्थान और यथाप्रमाण रचना हो उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं।

६ बन्धन नामकर्म—शरीर नामकर्मके उदयसे ग्रहण किये हुए पुद्गल स्कन्धोंका परस्पर सम्बन्ध जिस कर्मके उदयसे होता है उसे बन्धन नामकर्म कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—औदारिक बन्धन नामकर्म, २ वैक्रियिक बन्धन नामकर्म, ३ आहारक बन्धन नामकर्म, ४ तैजस बन्धन नामकर्म और ५ कार्मण बन्धन नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक शरीरके परमाणु दीवालमें लगे हुये ईंट और गारेकी तरह छिद्र सहित परस्पर सम्बन्धको प्राप्त हों वह औदारिक बन्धन नामकर्म है—इसीप्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

संघात नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे औदारिकादि शरीरोंके प्रदेशोंका छिद्र रहित बन्ध हो उसे संघात नाम कहते हैं। इसके भी ५ भेद हैं। औदारिक संघात आदि।

८ संस्थान नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे शरीरका संस्थान

---

* दो हाथ, दो पांव, नितम्ब, पीठ, वक्षःस्थल, और मस्तक ये ८ अङ्ग हैं तथा अंगुलि आदि उपाङ्ग हैं। "णलया बाहू य तहा णियम्ब पुट्ठी उरो य सीसो य। अट्ठ व दु अंगाइं देहे सेसा उवंगाइं॥"

—कर्मकाण्ड।

अर्थात् आकार बने उसे संस्थान नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद हैं—
१ समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म, २ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, ३ स्वाति-संस्थान, ४ कुब्जकसंस्थान, ५ वामनसंस्थान और ५ हुण्डकसंस्थान।

जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर ऊपर नीचे तथा बीचमें समान भागरूप अर्थात् सुडौल हो उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर वटवृक्षकी तरह नाभिसे नीचे पतला और ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर सर्पकी बामीकी तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वातिसंस्थान नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जकसंस्थान नामकर्म कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे बौना शरीर हो उसे वामनसंस्थान नाम-कर्म कहते हैं। और जिस कर्मके उदयसे शरीरके अङ्गोपाङ्ग किसी खास आकृतिके न हों उसे हुण्डकसंस्थान नामकर्म कहते हैं।

९ संहनन नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे हड्डियोंके बन्धनमें विशेषता हो उसे संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद हैं—
१ वज्रर्षभनाराच संहनन, २ वज्रनाराच संहनन, ३ नाराच संहनन ४ अर्द्धनाराच संहनन, ५ कीलक संहनन, और ६ असंप्राप्तसृपाटिका संहनन।

जिस कर्मके उदयसे वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (हड्डियां) वज्रकी ही हों उसे वज्रर्षभनाराच संहनन नाम-कर्म कहते हैं॥ १॥ जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़ और वज्रकी कीलियां हों परन्तु वेष्टन वज्रके न हों उसे वज्रनाराच संहनन

नामकर्म कहते हैं ॥ २ ॥ जिसके उदयसे सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हों उसे वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ३ ॥ जिसके उदयसे हड्डियोंकी संधियां अर्धकीलित हों उसे अर्धनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ४ ॥ जिसके उदयसे हड्डियां परस्पर कीलित हों उसे कीलक संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ५ ॥ और जिसके उदयसे जुदी जुदी हड्डियां नसोंसे बंधी हुई हों परस्परमें कीलित नहीं हों उसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ६ ॥

१० स्पर्श—जिसके उदयसे शरीरमें स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं—१ कोमल, २ कठोर ३ गुरु, ४ लघु, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध, और रूक्ष।

११ रस—जिसके उदयसे शरीरमें रस हो वह रस नामकर्म कहलाता है। इसके ५ भेद हैं—१ तिक्त (चरपरा), कटु (कडुआ), कषाय (कषायला), आम्ल (खट्टा) और मधुर (मीठा)।

१२ गन्ध—जिसके उदयसे शरीरमें गन्ध हो उसे गन्ध नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ सुगन्ध, २ दुर्गंध।

१३ वर्ण—जिसके उदयसे शरीरमें वर्ण अर्थात् रूप हो वह वर्ण नामकर्म है। इसके पांच भेद हैं—१ शुक्ल, २ कृष्ण, ३ नील, ४ रक्त और ५ पीत।

१४ आनुपूर्व्य—जिस कर्मके उदयसे विग्रह गतिमें मरणसे पहलेके शरीरके आकार आत्माके प्रदेश रहते हैं उसे आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं—१ नरक गत्यानुपूर्व्य, २ तिर्यगगत्यानुपूर्व्य, ३ मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और ४ देवगत्यानुपूर्व्य।

जिस समय आत्मा मनुष्य अथवा तिर्यञ्च आयुको पूर्ण कर पूर्व शरीरसे पृथक् हो नरकभवके प्रति जानेको सन्मुख होता है उस-समय पूर्व शरीरके आकार आत्माके प्रदेश जिस कर्मके उदयसे होते हैं उसे **नरकगत्यानुपूर्व्य** कहते हैं। इसीप्रकार अन्य भेदोंके लक्षण जानना चाहिये।

१५ अगुरुलघु नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर लोहेके गोलेकी तरह भारी और आकके तूलकी तरह हलका न हो वह अगुरुलघु नामकर्म है।

१६ उपघात—जिस कर्मके उदयसे अपने अङ्गोंसे अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं।

१७ परघात—जिसके उदयसे दूसरेका घात करनेवाले अङ्गोपाङ्ग हों उसे परघात नामकर्म कहते हैं।

१८ आताप—जिस कर्मके उदयसे आतापरूप शरीर हो उसे आताप नामकर्म कहते हैं।*

१९ उद्योत—जिसके उदयसे उद्योतरूप शरीर हो उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं।×

२० उच्छ्वास—जिसके उदयसे शरीरमें उच्छ्वास हो उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

२१ विहायोगति—जिसके उदयसे आकाशमें गमन हो उसे

---

* इसका उदय सूर्यके विमानमें स्थित बादर पर्याप्तक पृथिवीकायिक जीवोंके होता है। × इसका उदय चन्द्रमाके विमानमें स्थित पृथिवीकायिक जीवोंके तथा खद्योत (जुगनू) नामक चतुरिन्द्रिय जीवके होता है।

विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं—१ प्रशस्त विहायोगति और २ अप्रशस्त विहायोगति।

२२ प्रत्येक शरीर—जिस नामकर्मके उदयसे एक शरीरका एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नामकर्म कहते हैं।

२३ साधारण शरीर—जिसके उदयसे एक शरीरके अनेक जीव स्वामी हों उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते हैं।*

२४ त्रस नामकर्म—जिसके उदयसे द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें जन्म हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं।

२५ स्थावर नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंमें जन्म हो उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं।

२६ सुभग नामकर्म—जिसके उदयसे दूसरे जीवोंको अपनेसे प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं।

२७ दुर्भग नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे रूपादि गुणोंसे युक्त होनेपर भी दूसरे जीवोंको अप्रीति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

२८ सुस्वर—जिसके उदयसे उत्तम स्वर (आवाज) हो उसे सुस्वर नामकर्म कहते हैं।

२९ दुःस्वर—जिसके उदयके खराब स्वर हो उसे दुःस्वर नामकर्म कहते हैं।

३० शुभ—जिसके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर हों उसे शुभ नामकर्म कहते हैं।

---

* इसका उदय निगोदिया वनस्पतिकायिक जीवोंके होता है।

३१ अशुभ—जिसके उदयसे शरीरके अवयव देखनेमें मनोहर न हों उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

३२ सूक्ष्म—जिसके उदयसे ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसीको रोक सकता हो और न किसीसे रोका जासकता हो उसे सूक्ष्मशरीर नामकर्म कहते हैं।

३३ बादर (स्थूल)—जिस कर्मके उदयसे दूसरेको रोकनेवाला तथा दूसरेसे रुकनेवाला स्थूल शरीर प्राप्त हो उसे बादरशरीर नामकर्म कहते हैं।

३४ पर्याप्ति नामकर्म—जिसके उदयसे अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं *

३५ अपर्याप्ति नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे जीवके एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।+

---

* आहार वर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणाके परमाणुओंको शरीर इंद्रियादि रूप परिणत करनेवाली शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं। इसके छह भेद हैं–१ आहार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५ भाषा पर्याप्ति और ६ मनःपर्याप्ति। इनमेंसे एकेन्द्रिय जीवके भाषा और मनके विना ४, असैनी पंचेन्द्रियके मनके विना ५ और सैनी जीवके ६ पर्याप्तियां होती हैं। जिस जीवकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण होजाती है वह पर्याप्तक कहा जाता है।

+ जिस जीवकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती उसे अपर्याप्तक कहते हैं। अपर्याप्तकके दो भेद हैं–१ निर्वृत्यपर्याप्तक और २ लब्ध्यपर्याप्तक। जिस जीवकी शरीर पर्याप्ति अभी पूर्ण तो न हुई हो किंतु नियमसे पूर्ण होनेवाली हो उसे निर्वृत्यपर्याप्तक कहते हैं। जिस जीवकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो और न होनेवाली हो उसे लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं।

३६ स्थिर जिस कर्मके उदयसे शरीरकी धातुएं (रस, रुधिर, मांस, मेद, हांड़, मज्जा और वीर्य) तथा उपधातुएं (वांत, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम और जठराग्नि) अपने अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं।

३७ अस्थिर—जिस कर्मके उदयसे शरीरकी धातु उपधातुएं अपने अपने स्थान पर स्थिर न रहें उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं।

३८ आदेय—जिसके उदयसे प्रभा सहित शरीर हो उसे आदेय नामकर्म कहते हैं।

३९ अनादेय—जिसके उदयसे प्रभा रहित शरीर हो उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं।

४० यशःकीर्ति—जिसके उदयसे संसारमें जीवकी प्रशंसा हो उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

४१ अयशःकीर्ति—जिसके उदयसे जीवकी संसारमें निन्दा हो उसे अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

४२ तीर्थकरत्व—अरहन्तपदके कारणभूत कर्मको तीर्थकरत्व नामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्मके भेद—

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो भेद गोत्रकर्मके हैं।

१ उच्च गोत्र—जिसके उदयसे लोकमान्य कुलमें जन्म हो उसे उच्च गोत्रकर्म कहते हैं।

२ नीच गोत्र—जिस कर्मके उदयसे लोक निन्द्य कुलमें जन्म हो उसे नीच गोत्रकर्म कहते हैं ॥ १२ ॥

अन्तराय कर्मके भेद—

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तरायकर्मके ५ भेद हैं। जिसके उदयसे दानकी इच्छा रखता हुआ भी दान न कर सके उसे **दानान्तराय** कर्म कहते हैं। इसीप्रकार अन्य भेदोंके भी लक्षण समझना चाहिये ॥१३॥

स्थितिबन्धका वर्णन—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति—

आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥

अर्थ—आदिके तीन—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है।

नोट—मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवके ही इस उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है। × ॥ १४ ॥

मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

अर्थ—मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरकी है ॥ १५ ॥

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति—

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

× एक करोड़में एक करोड़का गुणा करनेपर जो गुणनफल आवे उसे कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

अर्थ—नामकर्म और गोत्रकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है ॥ १६ ॥

आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति—

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

अर्थ—आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी है ॥१८॥

वेदनीयकर्मकी जघन्य स्थिति—

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ—वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्तकी है ॥१८॥

नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति—

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ—नाम और गोत्रकर्मकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्तकी है ॥ १९ ॥

शेष पांच कर्मोंकी जघन्यस्थिति—

शेषाणामंतर्मुहूर्ता ॥ २० ॥

अर्थ—शेष रहे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और आयु कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥ २० ॥

अनुभव (अनुभाग) बन्धका वर्णन।

अनुभव बन्धका लक्षण—

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

१-दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है ।

२-आवलीसे ऊपर और मुहूर्तसे नीचे कालको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं । असंख्यात समयोंकी एक आवली होती है ।

अर्थ—कषायोंकी तीव्रता मन्दता अथवा मध्यमतासे जो आस्रवमें विशेषता होती है उससे होनेवाले विशेष पाकको विपाक कहते हैं। अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तके वशसे नाना रूपताको प्राप्त होनेवाले पाकको विपाक कहते हैं। और इस पाकको ही अनुभव अर्थात् अनुभागबन्ध कहते हैं*।

नोट १—शुभ परिणामोंकी अधिकता होने पर शुभ प्रकृतियोंमें अधिक और अशुभ प्रकृतियोंमें हीन अनुभाग होता है।

नोट २—अशुभ परिणामोंकी अधिकता होनेपर अशुभ प्रकृतियोंमें अधिक और शुभ प्रकृतियोंमें हीन अनुभाग होता है।

स यथानाम ॥ २२ ॥

अर्थ—वह अनुभाग बन्ध कर्मोंके नामानुसार ही होता है।

भावार्थ—जिस कर्मका जैसा नाम है उसमें वैसा ही अनुभाग बन्ध पड़ता है जैसे ज्ञानावरण कर्ममें 'ज्ञानको रोकना', दर्शनावरण कर्ममें 'दर्शनको रोकना' आदि ॥ २२ ॥

फल दे चुकनेके बाद कर्मोंका क्या होता है?—

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ—तीव्र मन्द या मध्यम फल दे चुकनेके बाद कर्मोंकी निर्जरा होजाती है। अर्थात् कर्म उदयमें आकर आत्मासे पृथक् हो जाते हैं।

निर्जराके दो भेद हैं—१ सविपाक निर्जरा और २ अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा—शुभ अशुभ कर्मोंको जिस प्रकार बांधा

* 'विशिष्टः पाकः', अथवा 'विविधः पाकः विपाकः'।

आस्रवके ५७ भेद।

आस्रव

५ मिथ्यादर्शन — **१२ अविरति** — **प्रमाद** — **२५ कषाय** — **१५=५७ योग**

मिथ्यादर्शन
१ एकान्त
२ विपरीत
३ संशय
४ वैनयिक
५ अज्ञान

अविरति

इन्द्रियाविरति
१ स्पर्शनेन्द्रियाविरति
२ रसनेन्द्रियाविरति
३ घ्राणेन्द्रियाविरति
४ चक्षुरिन्द्रियाविरति
५ कर्णेन्द्रियाविरति
६ मनोऽविरति

प्राणिहिंसाऽविरति
१ पृथिवीकायिक हिंसाविरति
२ जलकायिक हिंसाविरति
३ अग्निकायिक हिंसाविरति
४ वायुकायिक हिंसाविरति
५ वनस्पति.कायिक हिंसाविरति
६ त्रसकायिक हिंसाविरति

कषाय

कषाय

अनंता० — अप्रत्या० — प्रत्या० — संज्वलन०

अनंता०	अप्रत्या०	प्रत्या०	संज्वलन०
१ क्रोध	१ क्रोध	१ क्रोध	१ क्रोध
२ मान	२ मान	२ मान	२ मान
३ माया	३ माया	३ माया	३ माया
४ लोभ	४ लोभ	४ लोभ	४ लोभ

नोकषाय
१ हास्य
२ रति
३ अरति
४ शोक
५ भय
६ जुगुप्सा
७ स्त्रीवेद
८ पुंवेद
९ नपुंसकवेद

योग

काययोग — वचनयोग — मनोयोग

काययोग
१ औदारिक काययोग,
२ औदारिक मिश्रकाययोग,
३ वैक्रियिक काययोग,
४ वैक्रियिक मिश्रकाययोग,
५ आहारक काययोग,
६ आहारक मिश्रकाययोग,
७ कर्माण काययोग।

वचनयोग
१ सत्य वचनयोग
२ असत्य वचनयोग
३ उभय वचनयोग
४ अनुभय वचनयोग

मनोयोग
१ सत्य मनोयोग
२ असत्य मनोयोग
३ उभय मनोयोग
४ अनुभय मनोयोग

कर्मप्रकृति भेद तथा स्थितिबन्ध।

नं०	कर्म	भेद	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
१	ज्ञानावरण	५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
२	दर्शनावरण	९	३० कोड़ाकोड़ी सागर	"
३	वेदनीय	२	३० कोड़ाकोड़ी सागर	१२ मुहूर्त
४	मोहनीय	२८	७० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
५	आयु	४	३३ सागर	"
६	नाम.	९३	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
७	गोत्र	२	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
८	अन्तराय	५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त

था उसीप्रकार स्थिति पूर्ण होनेपर फल देकर आत्मासे पृथक् होनेको सविपाक निर्जरा कहते हैं।

अविपाक निर्जरा—उदयकाल प्राप्त न होनेपर भी तप आदि उपायोंसे बीचमें ही फल भोगकर खिरा देनेको अविपाक निर्जरा कहते हैं।

नोट—इस सूत्रमें जो 'च' शब्दका ग्रहण किया है उससे नवम अध्यायके 'तपसा निर्जरा च' इस सूत्रसे सम्बन्ध सिद्ध होता है, जिससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मोंकी निर्जरा तपसे भी होती है, अर्थात् उक्त दो प्रकारकी निर्जराके कारण क्रमसे कर्मोंका विपाक और तपश्चरण है ॥ २३ ॥

प्रदेशबन्धका वर्णन।

प्रदेशबन्धका स्वरूप-

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥

अर्थ—(**नामप्रत्ययाः**) ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियोंके कारण, (**सर्वतः**) सब ओरसे अथवा देव नारकादि समस्त भवोंमें (**योगविशेषात्**) मन वचन कायरूप योग विशेषसे (**सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः**) सूक्ष्म तथा एकक्षेत्रावगाहरूप स्थित (**सर्वात्मप्रदेशेषु**) सम्पूर्ण आत्माके प्रदेशोंमें जो (**अनन्तानन्तप्रदेशाः**) कर्मरूप पुद्गलके अनन्तानन्त प्रदेश हैं उनको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

नोट—उक्त सूत्रमें प्रदेशबन्धके विषयमें होनेवाले निम्नलिखित ६ प्रश्नोंका समाधान किया गया है।

(१) किसमें कारण है? (२) किस समय होता है? (३) किस कारणसे होता है? (४) किस स्वभाववाला है? (५) किसमें होता है और (६) कितनी संख्यावाला है?

भावार्थ—आत्माके योग-विशेषोंद्वारा त्रिकालमें बँधनेवाले, ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियोंके कारणभूत, आत्माके समस्त प्रदेशोंमें व्याप्त होकर कर्मरूप परिणमने योग्य सूक्ष्म, आत्माके प्रदेशोंमें क्षीर-नीरकी तरह एक होकर स्थिर रहनेवाले, तथा अनन्तानन्त प्रदेशोंका प्रमाण लिये प्रदेशबन्धरूप पुद्गल स्कन्धोंको प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥२४॥

पुण्यप्रकृतियां—

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥

अर्थ—साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतियां हैं।

नोट—घातिया कर्मोंकी समस्त प्रकृतियां पापरूप हैं। किन्तु अघातिया कर्मोंमें पुण्य और पाप दोनोंरूप हैं। उनमेंसे ६८ प्रकृतियां पुण्यरूप हैं ॥ २५ ॥*

---

* सादं तिण्णेवाऊ, उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा वन्धणसंघादंगोवंगाइं वण्णचओ ॥ ४१ ॥
समचउरवज्जरिसहं; उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं।
तसबारसट्ठसट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥४२॥ [कर्मकाण्ड]

अर्थ—सातावेदनीय तीन आयु, (तिर्यञ्च, मनुष्य देव), उच्च गोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगति, देवगत्यानुपूर्व्य, पञ्चेन्द्रिय जाति, पांच देह, पांच बन्धन, पांच संघात, तीन अङ्गोपाङ्ग, २० वर्णादिक, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, उपघातको छोड़कर अगुरुलघु आदि ६ (अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत)

पापप्रकृतियां—

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

अर्थ—इससे भिन्न अर्थात् असातावेदनीय अशुभ आयु अशुभ नाम और अशुभ गोत्र ये पापप्रकृतियां हैं × ॥ २६ ॥

प्रशस्त विहायोगति और त्रसको आदि लेकर बारह (त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, प्रमाण, और तीर्थंकरत्व) इस तरह भेद विवक्षासे ६८ पुण्यप्रकृतियां हैं और अभेद विवक्षासे ४२ ही हैं, क्योंकि १६ वर्णादिककी और शरीरमें अन्तर्गत हुए ५ बन्धन और ५ संघात इसतरह २६ भेद घटानेसे ४२ अभेद विवक्षासे होती हैं।

× घादी णीचमसादं, णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी-
संठाणसंहदीणं, चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥ ४३ ॥
उवघादमसग्गमणं, थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥ (कर्मकाण्ड)

अर्थ—घातिया कर्मोंकी (५+९+२८+५=४७) सैंतालीस, नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति; तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आदिकी ४ जातियां, ५ संस्थान, ५ संहनन, वर्णादिक २०, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति तथा स्थावरको आदि लेकर १० (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति) इसप्रकार भेदविवक्षामें १०० प्रकृतियां और अभेद विवक्षामें ८४ प्रकृतियां पाप रूप हैं। क्योंकि वर्णादिकके १६ भेद घटानेसे ८४ भेद रहते हैं। इनमेंसे सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन दो का बन्ध नहीं होनेसे भेदविवक्षामें ९८का बन्ध और १०० का उदय होता है। इसीतरह अभेद विवक्षामें ८२ का बन्ध और ८४ का उदय होता है।

नोट—वर्णादि चार अथवा उनके २० भेद पुण्य और पाप दोनों रूप हैं, इसलिये ये दोनों ही भेदोंमें गिने जाते हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली।

(१) बन्ध किसे कहते हैं?

(२) ज्ञानावरणादि कर्म किस द्रव्यके भेद हैं? यदि पुद्गलके हैं तो देखनेमें क्यों नहीं आते?

(३) दर्शनमोहनीय कर्मके कितने भेद हैं और उनका क्या स्वरूप है?

(४) विग्रहगतिमें जीवका आकार कैसा होता है? और वैसे होनेमें कारण क्या है?

(५) पर्याप्ति, अस्थिर, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, और लाभान्तराय इन कर्मोंके लक्षण बतलाओ।

(६) सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाओ।

(७) अपने किये हुए कर्मोंका फल कब भोगना पड़ता है?

(८) प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं?

(९) फल दे चुकनेके बाद कर्मोंका क्या होता है?

(१०) पाप प्रकृतियां कितनी हैं? गिनाओ।

नवम अध्याय ।

संवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन ।

संवरका लक्षण—

आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

अर्थ—आस्रवका रोकना सो संवर है। अर्थात् आत्मामें जिन्न कारणोंसे कर्मोंका आस्रव होता था उन कारणोंको दूर करदेनेसे जो कर्मोंका आना बन्द होजाता है उसको संवर कहते हैं ।

संवरके दो भेद हैं—१ द्रव्यसंवर (पुद्गलमय कर्मोंके आस्रवका रुकना) और भावसंवर (कर्मास्रवके कारणभूत भावोंका अभाव होना) ॥ १ ॥

संवरके कारण—

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥

अर्थ—वह संवर तीन गुप्ति, पांच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहोंको जीतना और पांच प्रकारका चारित्र इन्न छह कारणोंसे होता है।

गुप्ति—संसार-भ्रमणके कारणस्वरूप मन, वचन और काय इन तीन योगोंके निग्रह करनेको गुप्ति कहते हैं।

समिति—जीवोंकी हिंसासे वचनेके लिये यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करनेको समिति कहते हैं ।

धर्म—जो आत्माको संसारके दुःखोंसे छुटाकर अभीष्ट स्थानमें प्राप्त करावे उसे धर्म कहते हैं ।

अनुप्रेक्षा—शरीरादिकके स्वरूपका बार बार चिन्तवन करनेको अनुप्रेक्षा कहते हैं।

परिषहजय—भूख आदिकी वेदना उत्पन्न होनेपर कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये उसे शान्त भावोंसे सहलेना सो परिषहजय है।

चारित्र—कर्मोंके आस्रवमें कारणभूत बाह्य आभ्यन्तर क्रियाओंके रोकनेको चारित्र कहते हैं ॥ २ ॥

निर्जरा और संवरका कारण—

तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

अर्थ—तपसे निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

नोट १—तपका दश प्रकारके धर्मोंमें अन्तर्भाव होजाने पर भी जो अलगसे ग्रहण किया है उसका प्रयोजन यह है कि वह संवर और निर्जरा दोनोंका कारण है तथा संवरका प्रधान कारण है।

नोट २—यद्यपि पुण्य कर्मका बन्ध होना भी तपका फल है तथापि तपका प्रधान फल कर्मोंकी निर्जरा ही है। जब तपमें कुछ न्यूनता होती है तब उससे पुण्यकर्मका बन्ध होजाता है, इसलिये पुण्यका बन्ध होना तपका गौण फल है। जैसे खेती करनेका प्रधान फल तो धान्य उत्पन्न होना है और गौण फल पलाल (प्याँल) वगैरहका उत्पन्न होना ॥ ३ ॥

गुप्तिका लक्षण व भेद—

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ—भलेप्रकारसे अर्थात् विषयाभिलाषाको छोड़कर मन, वचन, कायकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिके रोकनेको गुप्ति कहते हैं, उसके तीन

भेद हैं—१ मनोगुप्ति (मनको रोकना), २ वचनगुप्ति (वचनको रोकना) और ३ कायगुप्ति (शरीरको वशमें करना) ॥ ४ ॥

समितिके भेद—

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

अर्थ—सम्यग् ईर्या,* (चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना), सम्यग् भाषा (हित मित प्रिय वचन बोलना), सम्यग् एषणा (दिनमें एकवार शुद्ध निर्दोष आहार लेना) सम्यग् आदाननिक्षेप, (देख भाल कर किसी वस्तुको उठाना रखना) और सम्यग् उत्सर्ग (जीव रहित स्थानमें मलमूत्र क्षेपण करना) ये पांच समितिके भेद हैं ॥ ५ ॥

दशधर्म—

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

अर्थ—उत्तम क्षमा (क्रोधके कारण उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना), उत्तम मार्दव (उत्तम कुल, विद्या, बल आदिका घमंड नहीं करना) उत्तम आर्जव (मायाचारका त्याग करना) उत्तम शौच (लोभका त्याग कर आत्माको पवित्र बनाना), उत्तम सत्य (रागद्वेषपूर्वक असत्य वचनोंको छोड़कर हित, मित, प्रिय वचन बोलना), उत्तम संयम (५ इन्द्रिय और मनको वशमें करना तथा छह कायके जीवोंकी रक्षा करना) उत्तम त्याग (कीर्ति तथा प्रत्युपकारकी वाञ्छासे रहित होकर चार प्रकारका दान देना), उत्तम आकिञ्चन्य (पर पदार्थोंमें ममत्वरूप परिणामोंका त्याग करना) और

---

* इस सूत्रमें ऊपरके सूत्रसे 'सम्यक्' पदकी अनुवृत्ति आती है।

उत्तम ब्रह्मचर्य (स्त्रीमात्रका त्यागकर आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन रहना), ये दश धर्म हैं ॥ ६ ॥

बारह अनुप्रेक्षाएं-

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवर-निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ॥ ७ ॥

अर्थ—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, और धर्म इन बारहके स्वरूपको बार बार चिन्तवन करना सो अनुप्रेक्षा है।

अनित्यानुप्रेक्षा—संसारके समस्त पदार्थ इन्द्रधनुष बिजली अथवा जलके बबूलेके समान शीघ्र ही नष्ट होजानेवाले हैं ऐसा विचार करना सो अनित्यानुप्रेक्षा है।

अशरणभावना—जिस प्रकार निर्जन वनमें भूखे सिंहके द्वारा पकड़े हुए हरिणके बच्चेको कोई शरण नहीं है उसी प्रकार इस संसारमें मरते हुए जीवको कोई शरण नहीं है। यदि अच्छे भावोंसे धर्मका सेवन किया है तो वही आपत्तियोंसे बचा सक्ता है, इस प्रकार चिन्तवन करना सो अशरण-अनुप्रेक्षा है।

संसारानुप्रेक्षा—इस चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव पितासे पुत्र, पुत्रसे पिता, स्वामीसे दास, दाससे स्वामी होजाता है। और तो क्या स्वयं अपना भी पुत्र होजाता है, इत्यादि संसारके दुःखमय स्वरूपका विचार करना सो संसारानुप्रेक्षा है।

एकत्वानुप्रेक्षा—जन्म, जरा, मरण, रोग आदिके दुःख में

अकेला ही भोगता हूं, कुटुम्बी आदि जन साथी नहीं हैं, इत्यादि विचार करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है ।

अन्यत्वानुप्रेक्षा—शरीरादिसे अपनी आत्माको भिन्न चिन्तवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है ।

अशुचित्वानुप्रेक्षा—यह शरीर महा अपवित्र है, खून मांस आदिसे भरा हुआ है, स्नान आदिसे कभी पवित्र नहीं हो सक्ता । इससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं । इत्यादि शरीरकी अपवित्रताका विचार करना सो अशुचित्वानुप्रेक्षा है ।

आस्रवानुप्रेक्षा—मिथ्यात्व आदि भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है, आस्रव ही संसारका मूल कारण है, इस प्रकार विचार करना सो आस्रवानुप्रेक्षा है ।

संवरानुप्रेक्षा—आत्मामें नवीन कर्मोंका प्रवेश नहीं होने देना सो संवर है । संवरसे ही जीवोंका कल्याण होता है, ऐसा विचार करना सो संवरानुप्रेक्षा है ।

निर्जरानुप्रेक्षा—सविपाकनिर्जरासे आत्माका कुछ भला नहीं होता किंतु अविपाकनिर्जरासे ही आत्माका कल्याण होता है, इत्यादि निर्जराके स्वरूपका चिन्तवन करना सो निर्जरानुप्रेक्षा है ।

लोकानुप्रेक्षा—अनन्त अलोकाकाशके ठीक बीचमें रहनेवाले चौदह राजु प्रमाण लोकके आकारादिकका चिन्तवन करना सो लोकानुप्रेक्षा है ।

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा—रत्नत्रयरूप बोधिका प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार विचारना सो बोधिदुर्लभ भावना है ।

धर्मस्वाख्यातत्त्वानुप्रेक्षा—जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहा हुआ अहिंसा लक्षणवाला धर्म ही जीवोंका कल्याण करनेवाला है। इसके प्राप्त न होनेसे ही जीव चतुर्गतिके दुःख सहते हैं, आदि विचार करना सो धर्मस्वाख्यातत्त्वानुप्रेक्षा है।

नोट—इन अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन करनेवाला जीव उत्तमक्षमा आदि धर्मोको पालता है और परिषहोंको जीतता है। इसलिये इनका कथन दोनोंके बीचमें किया गया है॥ ७॥

परिषह सहन करनेका उपदेश—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीषहाः॥८॥

अर्थ—संवरके मार्गसे च्युत न होनेके लिये तथा कर्मोंकी निर्जराके हेतु बाईस परिषह सहन करनेके योग्य हैं॥ ८॥

बाईस परिषह—

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या-निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्श-मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि॥ ९॥

अर्थ—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक, ६ नाग्न्य, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृण स्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान, और २२ अदर्शन, ये बाईस परिषह हैं।

क्षुधा—क्षुधा (भूख) के दुःखको शान्त भावसे सह लेना सो क्षुधापरिषहजय है।

तृषा—पिपासारूपी अग्निको धैर्यरूपी जलसे शान्त करना तृषा परिषहजय है।

शीत—शीतकी वेदनाको शांतभावोंसे सहना शीतपरिषह जय है।

उष्ण—गर्मीकी वेदनाको शान्त भावोंसे सहना उष्णपरिषहजय है।

दंशमशक—डांश, मच्छर, बिच्छू, चिउंटी आदिके काटनेसे उत्पन्न हुई वेदनाको शान्त भावोंसे सहना सो दंशमशक परिषहजय है।

नाग्न्य—नग्न रहते हुए भी मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं करना सो नाग्न्य परिषहजय है।

अरति—अरतिके कारण उपस्थित होनेपर भी संयममें अरति अर्थात् अप्रीति नहीं करना सो अरति परिषहजय है।

स्त्री—स्त्रियोंके हावभाव प्रदर्शन आदि उपद्रवोंको शांतभावसे सहना, उन्हें देख कर मोहित नहीं होना सो स्त्री परिषहजय है।

चर्या—गमन करते समय खेदखिन्न नहीं होना सो चर्या परिषहजय है।

निषद्या—ध्यानके लिये नियमित कालपर्यंत स्वीकार किये हुए आसनसे च्युत नहीं होना सो निषद्यापरिषह जय है।

शय्या—विषम कठोर कंकरीले आदि स्थानोंमें एक करवटसे निद्रा लेना और अनेक उपसर्ग आने पर भी शरीरको चलायमान नहीं करना सो शय्या परिषहजय है।

आक्रोश—दुष्ट जीवोंके द्वारा कहे हुए कठोर शब्दोंको शांत भावोंसे सह लेना सो आक्रोश परिषहजय है।

वध—तलवार आदिके द्वारा शरीर पर प्रहार करनेवालेसे भी द्वेष नहीं करना सो वध परिषहजय है।

याचना—प्राणोंका वियोग होनेपर भी आहारादिकको नहीं मांगना सो याचना परिषहजय है।

अलाभ—भिक्षाके प्राप्त न होने पर सन्तोष धारण करना सो अलाभ परिषहजय है।

रोग—अनेक रोग होने पर भी उनकी वेदनाको शांत भावोंसे सह लेना सो रोग परिषहजय है।

तृणस्पर्श—चलते समय पांवोंमें तृण कण्टक वगैरहके चुभ जानेसे उत्पन्न हुए दुःखको सहना सो तृण स्पर्श परिषहजय है।

मलपरिषहजय—जलकायिक जीवोंकी हिंसासे बचनेके लिये स्नान करना तथा अपने मलिन शरीरको देखकर ग्लानि नहीं करना सो मल परिषहजय है।

सत्कारपुरस्कार—अपनेमें गुणोंकी अधिकता होनेपर भी यदि कोई सत्कारपुरस्कार न करे तो चित्तमें कलुषता न करना सो सत्कार[1]-पुरस्कार[2] परिषहजय है।

प्रज्ञा—ज्ञानकी अधिकता होनेपर भी मान नहीं करना सो प्रज्ञा परिषहजय है।

अज्ञान—ज्ञानादिककी हीनता होनेपर लोगोंके द्वारा किये हुए तिरस्कारको शान्त भावोंसे सह लेना अज्ञान परिषहजय है।

१-प्रशंसाको सत्कार कहते हैं। २-कोई कार्य करते समय मुखिया बना लेना सो पुरस्कार है।

अदर्शन—बहुत समयतक कठोर तपश्चर्या करनेपर भी मुझे अवधिज्ञान तथा चारण आदि ऋद्धियोंकी प्राप्ति नहीं हुई इसलिये व्रत धारण करना व्यर्थ है, इसप्रकार अश्रद्धाके भाव नहीं होना सो अदर्शन परिषहजय है।

नोट—उक्त बाईस परिषहोंको संक्लेशरहित भावोंसे जीत लेनेपर संवर होता है।

किस [1]गुणस्थानमें कितने परिषह होते हैं?

सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥

अर्थ—सूक्ष्म साम्पराय नामक दशवें और छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवे उपशांतमोह तथा बारहवें क्षीणमोह नामक गुणस्थानमें १४ परिषह होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक, ६ चर्या ७ शय्या, ८ वध, ९ अलाभ, १० रोग, ११ तृणस्पर्श, १२ मल, १३ प्रज्ञा और १४ अज्ञान ॥ १० ॥

एकादश जिने ॥ ११ ॥

अर्थ—सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानमें रहनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के ऊपर लिखे हुए १४ परिषहोंमेंसे अलाभ, प्रज्ञा और अज्ञानको छोड़कर शेष ११ परिषह होते हैं।

१—मोह और योगके निमित्तसे होनेवाली आत्मपरिणामोंकी तरतमताको गुणस्थान कहते हैं। वे १४ होते हैं—१ मिथ्यादृष्टि, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ असंयत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तसंयत, ७ अप्रमत्तसंयत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली।

नोट—जिनेन्द्र भगवानके वेदनीय कर्मका उदय होनेसे उसके उदयसे होनेवाले ११ परिषह कहे गये हैं। यद्यपि मोहनीय कर्मका उदय न होनेसे भगवान्को क्षुधादिककी वेदना नहीं होती* तथापि इन परिषहोंका कारण वेदनीय कर्म मौजूद है इसलिये उपचारसे ११ परिषह कहे गये हैं। वास्तवमें उनके एक भी परिषह नहीं होता है॥ ११॥

बादरसांपराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थ—बादरसाम्पराय अर्थात् स्थूल कषायवाले छठेंसे नवमें गुणस्थान तक सब परिषह होते हैं। क्योंकि इन गुणस्थानोंमें परिषहोंके कारणभूत सब कर्मोंका उदय है॥ १२॥

कौन परिषह किस कर्मके उदयसे होता है?—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ—प्रज्ञा× और अज्ञान ये दो परिषह ज्ञानावरण कर्मके उदयसे होते हैं॥ १३॥

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ—दर्शनमोहनीय और अन्तरायकर्मका उदय होने पर क्रमसे अदर्शन और अलाभ परिषह होते हैं॥ १४॥

---

* वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मकी संगति पाकर ही दुःखका कारण होता है, स्वतन्त्र नहीं।

× ज्ञानावरण कर्मका उदय होनेपर जो थोड़ा ज्ञान प्रकट होता है वह अहङ्कारको पैदा करता है। ज्ञानावरणका नाश हो जानेपर अहङ्कार नहीं होता। इसलिये प्रज्ञा परिषह भी ज्ञानावरण कर्मके उदयसे माना है।

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचना-सत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थ—चारित्रमोहनीय कर्मका उदय होने पर नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार ये ७ परिषह होते हैं ॥ १५ ॥

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

अर्थ—शेषके ११ परिषह (क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश-मशक, चर्य्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल) वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं ॥ १६ ॥

एकसाथ होनेवाले परिषहोंकी संख्या—

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ।१७।

अर्थ—(युगपत्) एकसाथ (एकस्मिन्) एक जीवमें (एकादयः) एकको आदि लेकर (आ एकोनविंशतेः) उन्नीस परिषहतक (भाज्याः) विभक्त करना चाहिये ।

भावार्थ—एक जीवके एक कालमें अधिकसे अधिक १९ परिषह होसक्ते हैं क्योंकि शीत और उष्ण इन दो परिषहोंमेंसे एक कालमें एक ही होगा तथा शय्या चर्य्या और निषद्या इन तीनमेंसे भी एक कालमें एक ही होगा । इसप्रकार ३ परिषय कमकर दिये गये हैं ॥ १७ ॥ *

* यहां कोई प्रश्न करसक्ता है कि प्रज्ञा और अज्ञान भी एकसाथ नहीं होंगे इसलिये १ परिषह और कम करना चाहिये। पर वह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि एक ही कालमें एक ही जीवके श्रुतज्ञानादिकी अपेक्षा प्रज्ञा और अवधिज्ञानादिककी अपेक्षा अज्ञान रह सक्ता हैं ।

पांच चारित्र—

सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥

अर्थ—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात ये चारित्रके पांच भेद हैं।

सामायिक चारित्र—भेद रहित सम्पूर्ण पापोंके त्याग करनेको सामायिक चारित्र कहते हैं।

छेदोपस्थापना—प्रमादके वशसे चारित्रमें कोई दोष लग जाने पर प्रायश्चित्तके द्वारा उसको दूर कर पुनः निर्दोष चारित्रको स्वीकार करना सो छेदोपस्थापना चारित्र है।

परिहारविशुद्धि—जिस चारित्रमें जीवोंकी हिंसाका त्याग होजानेसे विशेष शुद्धि प्राप्त होती है उसको परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय—अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषायका उदय होने पर जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं।

यथाख्यात—सम्पूर्ण मोहनीयकर्मके क्षय अथवा उपशमसे आत्माके शुद्ध स्वरूपमें स्थिर होनेको यथाख्यात चारित्र कहते हैं× ॥ १८ ॥

× सामायिक और छेदोपस्थापना ये २ चारित्र ६ वें ७ वें ८ वें और ९ वें गुणस्थानमें होते हैं। परिहारविशुद्धि ६ वें और ७ वें, सूक्ष्मसाम्पराय १० वें और यथाख्यात चारित्र ११ वें, १२ वें, १३ वें और १४ वें गुणस्थानमें होता है।

संवरतत्वके ५७ भेद।

संवर

गुप्ति ३ +	समिति ५ +	धर्म १० +	अनुप्रेक्षा १२ +	परिषहजय २२ +		चारित्र ५=५७
१ कायगुप्ति	१ ईर्या	१ उत्तम क्षमा	१ अनित्य	१ क्षुधा	१२ आक्रोश	१ सामायिक
२ वाग्गुप्ति	२ भाषा	२ ,, मार्दव	२ अशरण	२ तृषा	१३ वध	२ छेदोपस्थापना
३ मनोगुप्ति	३ एषणा	३ ,, आर्जव	३ संसार	३ शीत	१४ याचना	३ परिहारविशुद्धि
	४ आदाननिक्षेपण	४ ,, शौच	४ एकत्व	४ उष्ण	१५ अलाभ	४ सूक्ष्मसाम्पराय
	५ उत्सर्ग	५ ,, सत्य	५ अन्यत्व	५ दंशमशक	१६ रोग	५ यथाख्यात
		६ ,, संयम	३ अशुचित्व	६ नाग्न्य	१७ तृणस्पर्श	
		७ ,, तप	७ आस्रव	७ अरति	१८ मल	
		८ ,, त्याग	८ संवर	८ स्त्री	१९ सत्कारपुरस्कार	
		९ ,, आकिञ्चन्य	९ निर्जरा	९ चर्या	२० प्रज्ञा	
		१० ,, ब्रह्मचर्य	१० लोक	१० निषद्या	२१ अज्ञान	
			११ बोधिदुर्लभ	११ शय्या	२२ अदर्शन	
			१२ धर्म			

तपके भेद ।

तप

- बाह्य तप
  - १ अनशन
  - २ अवमोदर्य
  - ३ वृत्तिपरिसंख्यान
  - ४ रसपरित्याग
  - ५ विविक्तशय्यासन
  - ६ कायक्लेश
- अन्तरङ्ग तप
  - प्रायश्चित्त
    - १ आलोचना
    - २ प्रतिक्रमण
    - ३ तदुभय
    - ४ विवेक
    - ५ व्युत्सर्ग
    - ६ तप
    - ७ छेद
    - ८ परिहार
    - ९ उपस्थापन
  - विनय
    - १ ज्ञानविनय
    - २ दर्शन ,,
    - ३ चारित्र ,,
    - ४ उपचार ,,
  - वैयावृत्य
    - १ आचार्य वैयावृत्य
    - २ उपाध्याय ,,
    - ३ तपस्वि ,,
    - ४ शैक्ष्य ,,
    - ५ ग्लान ,,
    - ६ गण ,,
    - ७ कुल ,,
    - ८ सङ्घ ,,
    - ९ साधु ,,
    - १० मनोज्ञ ,,
  - स्वाध्याय
    - १ वाचना
    - २ प्रच्छना
    - ३ आम्नाय
    - ४ धर्मोपदेश
  - व्युत्सर्ग
    - १ बाह्योपधि त्याग
    - २ आभ्यन्तरोपधि त्याग
  - ध्यान
    - आर्तध्यान
      - १ अनिष्टसंयोगज
      - २ इष्टवियोगज
      - ३ वेदनाज
      - ४ निदान
    - रौद्रध्यान
      - १ हिंसानन्दी
      - २ मृषानन्दी
      - ३ चौर्यानन्दी
      - ४ परिग्रहानन्दी
    - धर्मध्यान
      - १ आज्ञाविचय
      - २ अपायविचय
      - ३ विपाकविचय
      - ४ संस्थानविचय
    - शुक्लध्यान
      - १ पृथक्त्ववितर्क
      - २ एकत्ववितर्क
      - ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति
      - ४ व्युपरतक्रियानिवर्ति

निर्जरातत्त्वका वर्णन।

बाह्य तप—

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागवि-विक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९ ॥

अर्थ—१ अनशन (संयमकी वृद्धिके लिये चार प्रकारके आहारका त्याग करना), २ अवमौदर्य (रागभाव दूर करनेके लिये भूखसे कम भोजन करना), ३ वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षाको जाते समय घर, गली आदिका नियम करना), ४ रसपरित्याग (इन्द्रियोंका दमन करनेके लिये घृत दुग्ध आदि रसोंका त्याग करना), ५ विविक्तशय्यासन (स्वाध्याय ध्यान आदिकी सिद्धिके लिये एकान्त तथा पवित्र स्थानमें सोना बैठना) और ६ कायक्लेश (शरीरसे ममत्व न रखकर आतापन योग आदि धारण करना) ये बाह्य तप हैं। ये तप बाह्य द्रव्योंकी अपेक्षा होते हैं तथा बाह्यमें सबके देखनेमें आते हैं इसलिये बाह्य तप कहे जाते हैं ॥ १९ ॥

आभ्यन्तर तप—

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्या-नान्युत्तरम् ॥ २० ॥

अर्थ—१ प्रायश्चित्त (प्रमाद अथवा अज्ञानसे लगे हुए दोषोंकी शुद्धि करना), २ विनय (पूज्य पुरुषोंका आदर करना), ३ वैयावृत्य (शरीर तथा अन्य वस्तुओंसे मुनियोंकी सेवा करना), ४ स्वाध्याय (ज्ञानकी भावनामें आलस्य नहीं करना), ५ व्युत्सर्ग (बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग करना) और ६ ध्यान

(चित्तकी चञ्चलताको रोककर उसे किसी एक पदार्थके चिन्तवनमें लगाना) ये ६ आभ्यन्तर तप हैं। इन तपोंका आत्मासे घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिये इन्हें आभ्यन्तर तप कहते हैं ॥ २० ॥

आभ्यन्तर तपोंके उत्तर भेद—

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥

अर्थ—ध्यानसे पहलेके पांच तप क्रमसे ९, ४, १०, ५, और २ भेदवाले हैं ॥ २१ ॥

[1]प्रायश्चित्तके ९ भेद—

आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥

अर्थ—१ आलोचना (प्रमादके वशसे लगे हुए दोषोंको गुरुके पास जाकर निष्कपट रीतिसे कहना), २ प्रतिक्रमण (मेरे द्वारा किये हुये अपराध मिथ्या हों ऐसा कहना), ३ तदुभय (आलोचना और प्रतिक्रमण दोनोंको करना), विवेक (आहार पानीका नियमित समय तक त्याग करना), व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग करना), तप (उपवासादि करना), छेद (एक दिन एक पक्ष एक महीना आदिकी दीक्षाका छेद करना×), परिहार (दिन पक्ष महीना आदि नियमित

१–प्रायः=अपराध, चित्त=शुद्धि अपराधकी शुद्धि करना प्रायश्चित्त है।

× बादमें दीक्षित हुए मुनि पहलेके दीक्षित मुनियोंको नमस्कार करते हैं, पर जिसकी जितने समयकी दीक्षा छेद दी जाती है उसको उतने समयमें दीक्षित हुये नये मुनियोंको नमस्कारादि करना पड़ता है। जो मुनि पहले उसके शिष्य समझे जाते थे दीक्षा छेद होने पर वह मुनि उनका शिष्य कहलाने लगता है।

समय तक संघसे पृथक् करदेना) और उपस्थापन (सम्पूर्ण दीक्षाका छेद कर फिरसे नवीन दीक्षा देना), ये ९ प्रायश्चित्त तपके भेद हैं। यह प्रायश्चित्त संघके आचार्य देते हैं ॥ २२ ॥

विनय तपके ४ भेद—

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ—१ ज्ञान विनय (आदरपूर्वक योग्यकालमें शास्त्र पढ़ना अभ्यास करना, आदि), २ दर्शन विनय (शङ्का कांक्षा आदि दोष-रहित सम्यग्दर्शनको धारण करना), ३ चारित्र विनय (चारित्रको निर्दोष रीतिसे पालना) और ४ उपचार विनय (आचार्य आदि पूज्य पुरुषोंको देखकर खड़े होना, नमस्कार करना आदि) ये चार विनय तपके भेद हैं ॥ २३ ॥

वैयावृत्य तपके १० भेद—

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसा-धुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, सङ्घ, साधु और मनोज्ञ इन १० प्रकारके मुनियोंकी सेवा-टहल करना सो आचार्यवैयावृत्य आदि १० प्रकारका वैयावृत्य है।

आचार्य—जो मुनि पंचाचारका स्वयं आचरण करते और दूसरोंको आचरण कराते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं।

उपाध्याय—जिनके पास शास्त्रोंका अध्ययन किया जाता हो वे उपाध्याय कहलाते हैं।

तपस्वी—महान् उपवासके करनेवाले साधुओंको तपस्वी कहते हैं।

शैक्ष्य—शास्त्रके अध्ययनमें तत्पर मुनि शैक्ष्य कहलाते हैं।

ग्लान—रोगसे पीड़ित मुनि ग्लान कहलाते हैं।

गण—वृद्ध मुनियोंके अनुसार चलनेवाले मुनियोंके समुदायको गण कहते हैं।

कुल—दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्योंको कुल कहते हैं।

सङ्घ—ऋषि, यति, मुनि, अनगार इन चार प्रकारके मुनियोंके समूहको संघ कहते हैं।

साधु—जिनने वहुत कालसे दीक्षा ग्रहण की है उन्हें साधु कहते हैं।

मनोज्ञ—लोकमें जिनकी प्रशंसा बढ़ रही हो उन्हें मनोज्ञ कहते हैं॥ २४॥

स्वाध्याय तपके ५ भेद—

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः॥ २५॥

अर्थ—वाचना (निर्दोष ग्रन्थको, उसके अर्थको तथा दोनोंको भव्य जीवोंको श्रवण कराना), पृच्छना (संशयको दूर करनेके लिये अथवा कृत निश्चयको दृढ़ करनेके लिये प्रश्न पूछना), अनुप्रेक्षा (जाने हुए पदार्थका बार बार चिन्तवन करना), आम्नाय (निर्दोष उच्चारण करते हुए पाठ करना) और धर्मोपदेश (धर्मका उपदेश करना) ये पांच स्वाध्याय तपके भेद हैं।

व्युत्सर्ग तपके २ भेद—

बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ—बाह्योपधिव्युत्सर्ग (धनधान्यादि बाह्य पदार्थोंका त्याग करना) और आभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्ग (क्रोध मान आदि खोटे भावोंका त्याग करना), ये दो व्युत्सर्ग तपके भेद हैं ॥ २६ ॥

ध्यान तपका लक्षण—

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥ २७ ॥

अर्थ—(उत्तमसंहननस्य) उत्तम संहननवालेका (आन्तर्मुहूर्तात्) अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त (एकाग्रचिन्तानिरोधः) एकाग्रतासे चिंताका रोकना (ध्यानम्) ध्यान है।

भावार्थ—किसी एक विषयमें चित्तको रोकना सो ध्यान है। वह उत्तम संहननधारी जीवोंके ही होता है और एक पदार्थका ध्यान अन्तर्मुहूर्तसे अधिक समय तक नहीं होता ॥ २७ ॥

ध्यानके भेद—

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये ध्यानके चार भेद हैं ॥ २८ ॥

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ—इनमेंसे धर्म और शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं।

१—वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन उत्तम संहनन कहलाते हैं। इन संहननके धारी जीवोंके ही ध्यान होसक्ता है।

नोट १—धर्मध्यान परम्परासे और शुक्लध्यान मोक्षका साक्षात्कारण है।

नोट २—शुरूके आर्त और रौद्र ये २ ध्यान संसारके कारण हैं॥

[1]आर्तध्यानका लक्षण और भेद—

आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः॥ ३०॥

अर्थ—अनिष्ट पदार्थका संयोग होनेपर उसे दूर करनेके लिये वार वार विचार करना सो (१) अनिष्ट संयोगज नामक आर्त-ध्यान है॥ ३०॥

विपरीतं मनोज्ञस्य॥ ३१॥

अर्थ स्त्री पुत्र आदि इष्ट जनोंका वियोग होनेपर उनके संयोगके लिये वार वार चिन्ता करना सो (२) इष्ट वियोगज नामक आर्तध्यान है॥ ३१॥

वेदनायाश्च॥ ३२॥

अर्थ—रोगजनित पीड़ाका निरन्तर चिन्तवन करना सो (३) वेदनाजन्य नामक आर्तध्यान हैं॥ ३२॥

निदानं च॥ ३३॥

अर्थ—आगामीकाल सम्बन्धी विषयोंकी प्राप्तिमें चित्तको तल्लीन करदेना सो (४) निदानज नामक आर्तध्यान है॥ ३३॥

१—दुःखमें होनेवाले ध्यानको आर्तध्यान कहते हैं।

गुणस्थानोंकी अपेक्षा आर्तध्यानके स्वामी—

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—वह आर्तध्यान अविरत अर्थात् आदिके चार गुणस्थान, देशविरत अर्थात् पञ्चम गुणस्थान और प्रमत्तसंयत अर्थात् छठवें गुणस्थानमें होता है।

नोट—छठवें गुणस्थानमें निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता है ॥ ३४ ॥

रौद्रध्यानके[1] भेद व स्वामी।

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥ ३५ ॥

अर्थ—हिंसा, झूट, चोरी और विषय संरक्षणसे उत्पन्न हुआ ध्यान रौद्रध्यान कहलाता है और वह अविरत तथा देशविरत (आदिके पांच) गुणस्थानोंमें होता है।

भावार्थ—निमित्तके भेदसे रौद्रध्यान चार प्रकारका होता है। १ हिंसानन्दी (हिंसामें आनन्द मानकर उसीके साधन जुटानेमें तल्लीन रहना), २ मृषानन्दी (असत्य बोलनेमें आनन्द मानकर उसीका चिन्तवन करना), ३ चौर्यानन्दी (चोरीमें आनंद मानकर उसीका चिन्तवन करना) और ४ परिग्रहानन्दी (परिग्रहकी रक्षाकी चिन्ता करना) ॥ ३५ ॥

१–क्रूर परिणामोंके होते हुए जो ध्यान होता है उसे रौद्र ध्यान कहते हैं।

[1]धर्मध्यानका स्वरूप व भेद—

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाक विचय और संस्थानविचयके लिये चिन्तवन करना सो धर्म्यध्यान है।

भावार्थ—धर्म्यध्यानके चार भेद हैं—१ आज्ञाविचय (आगमकी प्रमाणतासे अर्थका विचार करना), २ अपायविचय (संसारी जीवोंके दुःखका तथा उससे छुटनेके उपायका चिन्तवन करना), ३ विपाकविचय (कर्मके फलका—उदयका विचार करना) और ४ संस्थानविचय (लोकके आकारका विचार करना)।

स्वामी—यह धर्म्यध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सप्तम गुणस्थानतक श्रेणि चढ़नेके पहले पहले तक होता है ॥ ३६ ॥

[2]शुक्लध्यानके स्वामी—

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७ ॥

अर्थ—प्रारम्भके पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क नामक दो शुक्लध्यान पूर्वज्ञानधारी श्रुतकेवलीके ही होते हैं।

नोट—चकारसे श्रुतकेवलीके धर्मध्यान भी होता है ॥ ३७ ॥

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—अन्तके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया-

१—धर्मविशिष्टध्यानको धर्मध्यान कहते हैं। २—शुद्ध ध्यानको शुक्लध्यान कहते हैं।

निवर्ति ये दो शुक्लध्यान सयोगकेवली और अयोगकेवलीके ही होते हैं। * ॥ ३८ ॥

शुक्लध्यानके चार भेदोंके नाम—

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

अर्थ—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये शुक्लध्यानके चार भेद हैं ॥ ३९ ॥

शुक्लध्यानके आलम्बन—

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उक्त चार भेद क्रमसे तीन योग, एक योग, काययोग और योगरहित जीवोंके होते हैं अर्थात् पहला पृथक्त्ववितर्कध्यान मन वचन काय इन तीनों योगोंके धारकके होता है। दूसरा एकत्ववितर्कध्यान तीन योगोंमेंसे किसी एक योगके धारकके होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान सिर्फ काययोगके धारकके होता है और चौथा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान योगरहित जीवोंके होता है ॥ ४० ॥

---

* पहला भेद सातिशय अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थान तक रहता है। इससे मोहनीय कर्मका उपशम अथवा क्षय होता है। दूसरा भेद बारहवें गुणस्थानमें होता है। इससे शेष घातिया कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान प्राप्त होता है। तीसरा भेद तेरहवें गुणस्थानके अन्त समयमें होता है; इससे ७२ प्रकृतियोंका नाश होकर चौदहवां गुणस्थान प्राप्त होता है। और चौथा भेद चौदहवें गुणस्थानमें होता है। इससे शेष १३ प्रकृतियोंका क्षय होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

आदिके दो ध्यानोंकी विशेषता—

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

अर्थ—एक परिपूर्ण श्रुतज्ञानीके आश्रित रहनेवाले प्रारम्भके दो ध्यान वितर्क और वीचारकर सहित हैं ॥ ४१ ॥

अवीचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—किन्तु दूसरा शुक्लध्यान वीचारसे रहित है।

भावार्थ—जिसमें वितर्क और वीचार दोनों हों उसे पृथक्त्व-वितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं। और जो केवल वितर्कसे सहित हो उसे एकत्ववितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं।

सूक्ष्मकाययोगके आलम्बनसे जो ध्यान होता है उसे सूक्ष्म-क्रियाप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान कहते हैं। जिसमें आत्मप्रदेशोंमें परिस्पंद पैदा करनेवाली श्वासोच्छ्वास आदि समस्त क्रियाएं निवृत्त हो जाती हैं—एक हो जाती हैं उसे व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक शुक्ल-ध्यान कहते हैं ॥ ४२ ॥

वितर्कका लक्षण—

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

अर्थ—श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं ॥ ४३ ॥

वीचारका लक्षण—

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अर्थ, व्यञ्जन और योगकी पलटनाको वीचार कहते हैं।

अर्थसंक्रान्ति—अर्थ अर्थात् ध्यान करने योग्य पदार्थको

छोड़कर उसकी पर्यायको ध्यावे और पर्यायको छोड़कर द्रव्यको ध्यावे सो अर्थसंक्रान्ति है।

व्यञ्जनसंक्रान्ति—श्रुतके एक वचनको छोड़कर अन्यका अवलम्बन करना और उसे छोड़ किसी अन्यका अवलम्बन करना सो व्यञ्जनसंक्रान्ति है।

योगसंक्रान्ति—काययोगको छोड़कर मनोयोग या वचनयोगको ग्रहण करना और उन्हें छोड़कर किसी अन्य योगको ग्रहण करना सो योगसंक्रान्ति है ॥ ४४ ॥

पात्रकी अपेक्षा निर्जरामें न्यूनाधिकताका वर्णन—

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ—१ सम्यग्दृष्टि, २ पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावक, ३ विरत (मुनि), ४ अनन्तानुबन्धीकी[1] विसंयोजना करनेवाला, ५ दर्शनमोहका क्षय करनेवाला, ६ चारित्रमोहका उपशम करनेवाला, ७ उपशान्तमोहवाला, ८ क्षपकश्रेणि चढ़ता हुआ, ९ क्षीणमोह (बारहवें गुणस्थानवाला) और १० जिनेन्द्र भगवान् इन सबके [अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त परिणामोंकी विशुद्धताकी अधिकतासे आयुकर्मको छोड़कर] प्रतिसमय क्रमसे असंख्यातगुणी निर्जरा होती है ॥ ४५ ॥

निर्ग्रन्थ-साधुओंके भेद—

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥

---

१ अनन्तानुबन्धीके परमाणुओंमें अप्रत्याख्यानावरणादि रूप बदलनेवाला।

अर्थ—पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पांच प्रकारके निर्ग्रन्थ साधु हैं।

पुलाक—जो उत्तरगुणोंकी भावनासे रहित हों तथा किसी क्षेत्र व कालमें मूलगुणोंमें भी दोष लगावें उन्हें पुलाक कहते हैं।

वकुश—जो मूलगुणोंका निर्दोष पालन करते हों परन्तु अपने शरीर व उपकरणादिकी शोभा बढ़ानेकी कुछ इच्छा रखते हों उन्हें वकुश कहते हैं।

कुशील मुनि दो प्रकारके होते हैं—एक प्रतिसेवनाकुशील और दूसरा कषायकुशील।

प्रतिसेवनाकुशील—जिनके उपकरण तथा शरीरादिसे विरक्तता न हो और मूलगुण तथा उत्तरगुणकी परिपूर्णता है परन्तु उत्तर गुणोंमें कुछ विराधना-दोष हो उन्हें प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं।

कषायकुशील—जिन्होंने संज्वलनके सिवाय अन्य कषायोंको जीत लिया उन्हें कषायकुशील कहते हैं।

निर्ग्रन्थ—जिनका मोहकर्म क्षीण होगया हो ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि निग्रन्थ कहलाते हैं।

स्नातक—समस्त घातिया कर्मोंका नाश करनेवाले केवली भगवान् स्नातक कहलाते हैं॥ ४६॥

पुलाकादि मुनियोंमें विशेषता—

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थान-विकल्पतः साध्याः॥ ४७॥

अर्थ—उक्त मुनि—संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगोंके द्वारा भेदरूपसे साध्य हैं। अर्थात्—इन आठ अनुयोगोंके पुलाक आदि मुनियोंके विशेष भेद होते हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली।

(१) संवरके कारण क्या हैं?

(२) गुप्ति और समितिमें क्या अन्तर है?

(३) परिषह किस लिये सहन करना चाहिये? एक साथ कितने परिषह हो सकते हैं?

(४) प्रायश्चित्त तपके भेद लक्षण सहित गिनाओ।

(५) क्या संवरके विना भी निर्जरा हो सकती है?

(६) शुक्लध्यानके भेदोंका वर्णन कर उनके लक्षण बताओ और कौन भेद कब होता है? उसका क्या कार्य है? यह भी बताओ।

(७) पुलाक मुनि पूज्य हैं या अपूज्य?

(८) रौद्रध्यानी जीव मरकर कहां जाता है?

(९) आजकल ध्यान हो सकता है या नहीं?

(१०) ध्यानकी सिद्धिके उपयोगी कुछ नियम बताओ।

दशम अध्याय।

मोक्षतत्वका वर्णन।

केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण*—

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलम्॥१॥

अर्थ—मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त क्षीण-कषाय नामक बारहवां गुणस्थान पाकर बादमें एकसाथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका क्षय होनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ—चार घातिया कर्मोंका सर्वथा क्षय होजानेपर केवल-ज्ञान होते हैं।

नोट—घातिया कर्मोंमें सबसे पहले मोहनीय कर्मका क्षय होता है, इसलिये सूत्रमें गौरव होनेपर भी उसका पृथक् निर्देश किया है॥१॥

मोक्षके कारण और लक्षण—

बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः॥ २॥

अर्थ—बन्धके कारणोंका अभाव तथा निर्जराके द्वारा ज्ञानावरणादि समस्त कर्मप्रकृतियोंका अत्यन्त अभाव होना मोक्ष है।

भावार्थ— आत्मासे समस्त कर्मोंका सम्बन्ध छूट जाना मोक्ष है और वह संवर तथा निर्जराके द्वारा प्राप्त होता है॥ २॥

मोक्षमें कर्मोंके सिवाय और किसका अभाव होता है?

औपशमिकादिभव्यत्वानां च॥ ३॥

---

* मोक्ष केवल ज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये मोक्षके पहले केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन किया है।

अर्थ—मुक्त जीवके औपशमिक आदि भावोंका तथा पारिणामिक भावोंमेंसे भैव्यत्व भावका भी अभाव होजाता है।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥

अर्थ—केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व इन भावोंको छोड़कर मोक्षमें अन्य भावोंका अभाव होजाता है।

भावार्थ—मुक्त अवस्थामें जीवत्व नामक पारिणामिक भाव और कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाले आत्मिक भाव रहते हैं, शेषका अभाव होजाता है।

नोट—जिन गुणोंका अनन्तज्ञानादिके साथ सहभाव संबंध है ऐसे अनन्तवीर्य, अनन्तसुख आदि गुण भी पाये जाते हैं॥ ४ ॥

कर्मोंका क्षय होनेके वाद—

तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥

अर्थ—समस्त कर्मोंका क्षय होनेके वाद मुक्त जीव लोकके अन्त भाग पर्यन्त ऊपरको जाता है ॥ ५ ॥

मुक्त जीवके ऊर्ध्वगमनमें कारण—

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ—पूर्व प्रयोग-(पूर्वसंस्कार) से सङ्गरहित होनेसे, कर्मबन्धके नष्ट होनेसे और तथागतिपरिणाम अर्थात् ऊर्ध्वगमनका

१-जिसके सम्यग्दर्शनादि प्राप्त होनेकी योग्यता हो उसे भव्य कहते हैं। जब सम्यग्दर्शनादि गुण पूर्ण रूपसे प्रकट हो चुकते हैं तब आत्मामें भव्यत्वका व्यवहार मिट जाता है।

स्वभाव होनेसे मुक्त जीव ऊर्द्ध्वगमन करता है ॥ ६ ॥

उक्त चारों कारणोंके क्रमसे चार दृष्टान्त—

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—(१) मुक्तजीव कुम्भकारके द्वारा घुमाये हुए चाककी तरह पूर्वप्रयोगसे ऊर्ध्वगमन करता है। अर्थात् जिसप्रकार कुम्भकार चाकको घुमाकर छोड़ देता है तब भी चक्र पहलेके भरे हुए वेगके वशसे घूमता रहता है, उसी प्रकार जीव भी संसार अवस्थामें मोक्षप्राप्तिके लिये वार वार अभ्यास करता था, मुक्त होनेपर यद्यपि उसका वह अभ्यास छूट जाता है; तथापि वह पहलेके अभ्याससे ऊपरको गमन करता है। (२) मुक्तजीव, दूर हो गया है लेप जिसका ऐसे तूंबेकी तरह ऊपरको जाता है। अर्थात् तूंबेपर जबतक मिट्टीका लेप रहता है तबतक वह वजनदार होनेसे पानीमें डूबी रहती है पर ज्योंही उसकी मिट्टी गलकर दूर होजाती है त्योंही वह पानीके ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार यह जीव जबतक कर्मलेपसे सहित होता है तबतक संसारसमुद्रमें डूबा रहता है पर ज्यों ही इसका कर्मलेप दूर होता है त्यों ही वह ऊपर उठ कर लोकके ऊपर पहुंच जाता है। (३) मुक्त जीव कर्मबन्धसे मुक्त होनेके कारण एरण्डके बीजके समान ऊपरको जाता है। अर्थात् एरण्ड वृक्षका सूखा बीज जब चटकता है तब उसकी मिंगी जिस प्रकार ऊपरको जाती है उसीप्रकार यह जीव कर्मोंका बन्धन दूर होने पर ऊपरको जाता है। और (४) मुक्त जीव स्वभावसे ही अग्निकी शिखाकी तरह ऊर्ध्वगमन

ऊपरता है अर्थात् जिसप्रकार हवाके अभावमें अग्नि (दीपक आदि)की शिखा ऊपरको जाती है उसी प्रकार कर्मोंके विना यह जीव भी ऊपरको जाता है ॥ ७ ॥

लोकाग्रके आगे नहीं जानेमें कारण—

धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

अर्थ—धर्मद्रव्यका अभाव होनेसे मुक्त जीव लोकाग्र भागके आगे अर्थात् अलोकाकाशमें नहीं जातें। क्योंकि जीव और पुद्गलोंका गमन धर्मद्रव्यकी सहायतासे ही होता है। और अलोकाकाशमें धर्मद्रव्यका अभाव है* ॥ ८ ॥

मुक्त जीवोंमें भेद होनेके कारण—

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

अर्थ—क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर, संख्या, और अल्पबहुत्व, इन बारह अनुयोगोंसे सिद्धोंमें भी भेद साधने योग्य है।

भावार्थ—क्षेत्र—कोई भरतक्षेत्रसे, कोई ऐरावतक्षेत्रसे, और कोई विदेहक्षेत्रसे सिद्ध हुए हैं[1]। इस प्रकार क्षेत्रकी अपेक्षा सिद्धोंमें

---

* लोकके अन्तमें ४५ लाख योजन विस्तारवाली सिद्धशिला है, मुक्त जीव उसीके नीचे ठहर जाते हैं। मोक्षमें मुक्त जीवोंके शिर एक बराबर स्थान पर रहते हैं।

१—संहरणकी अपेक्षा अढाई द्वीप मात्रसे मुक्त होते हैं।

भेद होता है। काल—कोई उत्सर्पिणिकालमें सिद्ध हुए हैं और कोई अवसर्पिणीकालमें। गति—कोई सिद्ध गतिसे और कोई मनुष्य गतिसे सिद्ध हुए हैं। लिङ्ग—वास्तवमें अलिङ्गसे ही सिद्ध होते हैं अथवा द्रव्यपुंलिङ्गसे ही सिद्ध होते हैं। भावलिङ्गकी अपेक्षा तीनों लिङ्गोंसे मुक्त होसक्ते हैं। तीर्थ—कोई तीर्थङ्कर होकर सिद्ध होते हैं, कोई विना तीर्थङ्कर हुए सिद्ध होते हैं। कोई तीर्थंकरके कालमें सिद्ध होते हैं और कोई तीर्थङ्करके मोक्ष चले जानेके बाद उनके तीर्थ (आम्नाय)में सिद्ध होते हैं। चारित्र—चारित्रकी अपेक्षा कोई एकसे अथवा कोई भूतपूर्व नयकी अपेक्षा दो तीन चारित्रसे सिद्ध हुए हैं। प्रत्येकबुद्धबोधित-कोई स्वयं संसारसे विरक्त होकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं और कोई किसीके उपदेशसे। ज्ञान-कोई एक ही ज्ञानसे और कोई भूतपूर्व नयकी अपेक्षा दो तीन चार ज्ञानसे सिद्ध हुए हैं।

अवगाहना—कोई उत्कृष्ट अवगाहना-पांचसौ पचीस धनुषसे सिद्ध हुए हैं। कोई मध्यम अवगाहनासे और कोई जघन्य अवगाहना कुछ कम साढ़े तीन हाथसे सिद्ध हुए हैं। अन्तर-एक सिद्धसे दूसरे सिद्ध होनेका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आठ समयका है तथा विरहकाल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छ माहका होता है।

१—अवसर्पिणीके सुषमादुःषमा नामक तीसरे कालके अन्तिम भागसे लेकर दुःषमा सुषमा नामक चौथे काल तक उत्पन्न हुए जीव ही मुक्त होते हैं। चौथे कालका उत्पन्न हुआ जीव पंचम कालमें मुक्त होसकता है, पर पंचमका पैदा हुआ पंचममें मुक्त नहीं होसक्ता। २—भाववेदका उदय नवम गुणस्थान तक रहता है इसलिये मोक्ष अवेद दशामें ही होता है। ३—भूतकालकी बातको वर्तमानमें कहनेवाला।

संख्या—जघन्यसे एक समयमें एक ही जीव सिद्ध होता है। और उत्कृष्टतासे १०८ जीव सिद्ध होसकते हैं। अल्पबहुत्व—समुद्र आदि जल क्षेत्रोंसे थोड़े सिद्ध होते हैं और विदेहादि क्षेत्रोंसे अधिक सिद्ध होते हैं। इसप्रकार सिद्ध जीवोंमें वाह्य निमित्तकी अपेक्षा भेदकी कल्पना की गई है। वास्तवमें आत्मीय गुणोंकी अपेक्षा कुछ भी भेद नहीं रहता ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥

दोधक वृत्त—

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसंधिविवर्जितरेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षन्तव्यं को न विमुह्यति शास्त्र-
समुद्रे ॥ १ ॥

अर्थ—इस शास्त्रमें यदि कहीं अक्षर मात्रा पद वा स्वर रहित हो तथा व्यंजन संधि व रेफसे रहित हो तो सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करें। क्योंकि शास्त्र रूपी समुद्रमें कौन पुरुष मोहको प्राप्त नहीं होता अर्थात् भूल नहीं करता ॥ १ ॥

अनुष्टुप्—

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥ २ ॥

अर्थ—दश अध्यायोंमें विभक्त इस तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) के पाठ करनेसे श्रेष्ठ मुनियोंने एक उपवासका फल कहा है।

भावार्थ—जो पुरुष भावपूर्वक पूर्ण मोक्षशास्त्रका पाठ करता है उसे एक उपवासका फल लगता है।* ॥ २ ॥

प्रश्नावली।

(१) घातिया कर्मोंमें सबसे पहले किसका क्षय होता है?

(२) क्या केवलज्ञानके विना भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है?

(३) मोक्षका क्या लक्षण है?

(४) 'सर्वकर्मविप्रमोक्षः' इस वाक्यमें वि, प्र शब्दका क्या अर्थ होता है?

(५) मोक्षमें जीवोंका आकार कैसा होता है?

(६) जब कि भव्यत्वभाव पारिणामिक भाव है तब सिद्ध अवस्थामें उसका अभाव क्यों होजाता है? यदि भव्यत्वका अभाव होता है तो जीवत्वका भी अभाव क्यों नहीं होता?

(७) मुक्त जीवोंमें भेद किसप्रकार होता है?

(८) जीवका ऊर्ध्वगमन क्यों होता है? उदाहरण सहित समझाओ।

(९) मुक्त जीव सिद्ध शिलासे आगे क्यों नहीं जाते?

(१०) मुक्त जीवोंको मध्य लोकसे मोक्षस्थान तक पहुँचनेमें कितना समय लगता है?

(११) 'जो जीव मोक्षमें रहते हैं उन्हें मुक्त कहते हैं' यदि मुक्त जीवोंका यह लक्षण माना जावे तो क्या हानि होगी?

---

* ये दोनों श्लोक मूलग्रन्थकर्ताके बनाये हुए नहीं हैं।

लक्षण-संग्रह ।

दा० माणिकचन्द दि० जैन परीक्षालय, मुंबईका

तत्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) का प्रश्नपत्र ।

समय ३ घण्टा] [ता० २४-४-४१

१—नय और निक्षेपमें अन्तर बताकर, ऋजुसूत्र और एवंभूतनयमें अन्तर बताओ? क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञानके भेद लिखकर यह भी बताओ कि मतिज्ञानको सच्चा और झूठा बतानेमें क्या कारण है? १५

२—क्षायोपशमिकभावका लक्षण लिखकर यह बताओ कि लेश्या औदयिकी क्यों है? आहारक शरीरका स्वरूप लिखकर यह भी लिखो कि अकालमृत्यु किनकी नहीं होती है? १५

३—जम्बूद्वीपका नकशा बनाकर उसमें मेरुपर्वत, तिगिंछह्रद, शिखरिणीपर्वत और रक्तोदा नदीको दिखाओ? म्लेच्छोंसे तुम क्या समझते हो। १२

४—सामानिक और आभियोग्य देवोंका लक्षण लिखकर यह बताओ कि सर्वार्थसिद्धि और लौकांतिक देवोंमें जघन्य स्थिति क्या है? भवनवासियोंकी कुमार संज्ञा क्यों है? १५

अथवा

लोकाकाशके प्रदेश बताकर यह बतलाओ कि एक जीव कितने आकाशमें रहता है? भेद और संघातसे तुम क्या समझते हो? असातावेदनीय और दर्शन-मोहनीयके आस्रवके कारण क्या हैं, सलक्षण लिखो? १५

५—सल्लेखनाका लक्षण लिखकर परिग्रहपरिमाणव्रत व भोगोपभोग परिमाणव्रतमें भेद बताओ ? प्रकृति और प्रदेशबन्ध क्या है ? १२

६—ध्यान और सामायिकका लक्षण लिखकर पुलाकादि मुनियोंका स्वरूप लिखो ? सिद्ध जीवोंमें भेद क्यों है, परीषहोंके भेद लिखकर अरति और अदर्शनका लक्षण लिखो ? १४

७—निम्न सूत्रोंका विशदार्थ लिखो ?

अर्थस्य, निरुपभोगमंत्यम्, द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः, स यथा नाम, और वितर्कः श्रुतम् ? १२

शुद्धता और सफाईके लिए ५

अ० भा० दि० जैन परिषद् परीक्षाबोर्डका

मोक्षशास्त्र पूर्णका प्रश्नपत्र ।

समय ३ घण्टे]   २७ जनवरी १९४१   [पूर्णांक १००

परीक्षकः—श्री खुशालचन्द्र जैन, साहित्याचार्य, एम० ए०

नोटः-अन्तके ३ और आदिके ४ मेंसे कोई तीन प्रश्न कीजिये ।
कुल ६ प्रश्न करो ।

१ सात तत्व, तीन जन्म, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और चार बन्ध इनमेंसे किन्हीं १० की परिभाषायें लिखो । १४

२ चारित्रमोहनीयके आश्रवका कारण बताते हुए पांचों अणुव्रतोंका स्वरूप लिखो तथा यह भी समझाओ कि वे कौनसी भावनाएँ हैं जो ब्रह्मचर्यको दृढ़ बनाती हैं । १४

३ नीचे लिखे सूत्रोंमेंसे किसी चारको सरल हिंदीमें समझाओ । १४

(क) सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।

(ख) सर्वस्य ।

(ग) तिर्यग्योनिजानां च ।

(घ) न देवाः ।

(ङ) प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।

(च) धर्मास्तिकायाभावात् ।

४ बन्धके कारण, गृहस्थकी परिभाषा और चोरीका लक्षण लिखो । १४

५ मोक्षशास्त्रमें क्या बताया है यह पूछे जानेपर आप साधारण व्यक्तिको क्या उत्तर देंगे ? उत्तर प्रत्येक अध्यायके सारको समझाता हो। २०

६ मोक्षशास्त्रको बनानेवाले आचार्यजीके बाबत आप क्या जानते हैं। १०

७ निम्नलिखित विषयोंमेंसे किसी एकपर निबन्ध लिखिए। २०

(क) साधारण शिष्टाचार।

(ख) शारीरिक तथा मानसिक अवस्थापर शुद्ध भोजनका प्रभाव।

(ग) माताकी जवाबदेही

(घ) शिशुपालन।

(ङ) गृहिणीकी आदर्श दिनचर्या।

(च) लौकिक और पारलौकिक जीवनमें सम्यग्दर्शनकी उपयोगिता।

(छ) कर्मसिद्धान्त।

(ज) मनुष्य और धार्मिक शिक्षा।

(झ) मैं जैन धर्मको उत्तम धर्म क्यों समझता हूँ ?

नोटः—सुन्दर शुद्ध तथा नियमित लेखके लिए। ८